पाँचवां अध्याय

संजीव के कथा-साहित्य में समाजार्थिक चिंतन का स्वरूप

चिंतन का अर्थ है –सोच-विचार करना। किसी भी सुने हुए, पढ़े हुए, देखे हुए समाज में घटित, संभावित, घटनाओं, समस्याओं, अवधारणाओं, निर्णयों आदि के समाधान हेतु एकांत में बैठकर गंभीर सोच-विचार करने की क्रिया को चिंतन कहते हैं। मनुष्य एक चिंतनशील सामाजिक प्राणी है। उसके मस्तिष्क में हमेशा किसी न किसी विषय को लेकर मंथन चलता रहता है। अपने मनन करने की प्रवृत्ति के कारण ही वह मनुष्य कहलाता है। चित्त के साथ बुद्धि के समावेश का परिणाम चिंतन है। इसके लिए ज्ञान की आवश्यकता है। ज्ञान के अभाव में यह चिंतन विपरीत दिशा में भी जा सकती है। शास्त्रों के अनुसार ज्ञानरहित अवस्था में मनुष्य चिंता करता है, चिंतन नहीं, जिसे चिता सदृश्य माना गया है। जबकि अध्यात्म जगत में चिंतन का संबंध आत्मा और परमात्मा से है। यह साधना की प्रथम अवस्था है। विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने इसकी परिभाषा निम्न रूप में दी है –

रॉस के अनुसार, 'चिंतन मानसिक क्रिया का ज्ञानात्मक पहलू है या मन की बातों से संबंधित मानसिक क्रिया है।"[1]

वैलेंटाइन के अनुसार, "चिंतन शब्द का प्रयोग उस क्रिया के लिए किया जाता है, जिससे ृंखलाबद्ध विचार किसी लक्ष्य या उद्देश्य की ओर अविराम गति से प्रवाहित होते हैं।"[2]

रायर्वन के अनुसार, "चिंतन इच्छा संबंधी क्रिया है जो किसी असंतोष के कारण आरंभ होती है। और प्रयास के आधार पर चलती हुई स्थिति पर पहुँच जाती है, जो इच्छा को संतुष्ट करती है।"[3]

उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से यह बात स्पष्ट होती है कि हम अपने मन और मस्तिष्क में विभिन्न समस्याओं, संकल्पनाओं, अवधारणाओं, परिकल्पनाओं को बिठाकर

---

1. *https://hindivaani.com*
2. *https://hindivaani.com*
3. *https://hindivaani.com*

उसका समाधान ढूँढ़ने के लिए मानसिक विश्लेषण करते रहते हैं। हम अपने समस्या के निदान के लिए अपने विचारों का आदान-प्रदान भी करते हैं। चिंतन का संबंध सामाजिक विकासक्रम से है। इसका स्वरूप सामाजिक होता है। चिंतन किसी उद्देश्य या लक्ष्य को प्राप्त करने का साधन है परंतु यह उद्देश्य कोरी कल्पना भी नहीं होनी चाहिए। जब-जब मनुष्य पर कोई समस्या आती है तो वह इसके समाधान के लिए कोई न कोई उपाय जरूर सोचता है इसलिए चिंतन समस्या समाधान संबंधी व्यवहार है। परंतु जब हम कोई बाह्य कार्य करके समस्या का समाधान करते हैं तो वह चिंतन की परीधि में नहीं आता है क्योंकि चिंतन में मानसिक खोज होती है। इसमें अगर हमारी कोई आवश्यक वस्तु गुम हो जाती है तो इधर-उधर दौड़ने के बजाय हम एक जगह शांत बैठकर सोचने का प्रयास करते हैं कि हमने उस वस्तु को कहाँ रख दिया। इसमें किसी भी प्रकार के समस्या का मानसिक समाधान सोचा जाता है। उदाहरण के लिए इंजीनियर किसी विल्डींग का प्लान पहले अपने मस्तिष्क में तैयार करता है।

मनुष्य जन्म से चिंतक नहीं होता है। वह अपनी योग्यता और कठिन अभ्यास के बल पर इसे सीखता है और चिंतनशील व्यक्ति ही समाज में अपना योगदान दे सकता है। चिंतन चिंतक के पूर्व ज्ञान एवं अनुभव पर आधारित होता है। इसलिए हमें स्वाध्याय तथा विचार-विमर्श के लिए हमेशा प्रस्तुत रहना चाहिए।

साहित्य और समाज के बीच एक गहरा संबंध होता है। साहित्यकार भी समाज में ही रहने वाला एक प्राणी है और समाज में होने वाली घटनाओं से वह अपने आप को पृथक कैसे कर सकता है? वह समाज में जो कुछ भी देखता, भोगता है उन्हीं का यथार्थ रूप अपने रचनाओं में व्यक्त करता है। गोल्डमान ने भी साहित्यिक कृति के सामाजिक स्वरूप को व्यक्त करते हुए कहा है कि कोई भी कृति किसी लेखक की रचना होती है और वह लेखक के विचारों तथा अनुभूतियों को व्यक्त करती है। लेकिन वे विचार और भाव समाज तथा वर्ग के दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार और चिंतन से प्रभावित होते हैं। हम जिस युग में जी रहे हैं उसे विज्ञान युग की जगह समस्या युग कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। संजीव के कथा-साहित्य में भी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक इत्यादि समस्याओं को

वाणी मिली है। शोध-प्रबंध के प्रस्तुत अध्याय में समाजार्थिक चिंतन के स्वरूप पर विचार किया जायेगा। समस्या और मानव जीवन का आपस में शाश्वत संबंध है। समस्याओं ने मनुष्य को विकासोन्मुख भी बनाया है। संजीव का पूरा कथा-साहित्य समस्याओं का भंडार है। उनकी एक भी ऐसी रचना नहीं है जिसमें किसी न किसी समस्या को न उठाया गया है। संजीव ने अपने कथा-साहित्य में दुर्गम पिछड़े अंचलों की व्यथा-कथा को विभिन्न कोणों से पकड़ने का प्रयास किया है। उन्होंने अपने कथा साहित्य में ग्रामीण-आंचलिक, शहरी-पहाड़ी, मैदानी सभी इलाकों के शोषण, तंत्र, व्यवस्था के साथ-साथ माफिया-तंत्र, सरकारी संपत्ति की लूट, दलित और आदिवासी लोगों का शोषण, पुलिस प्रशासन का अत्याचार, सामंती पूँजीवादी शोषण, भ्रष्ट-न्याय व्यवस्था, स्त्री-शोषण, डाकू समस्या, सर्कस कलाकारों की पीड़ा, आत्महत्या करते किसानों की मजबूरी, लोक-कलाकारों का दर्द-पीड़ा, पूँजीपतियों द्वारा विज्ञान एवं वैज्ञानिकों का दोहन, वैश्वीकरण में बंद होते कुटीर उद्योग, बेरोजगारी, अशिक्षा, अंधविश्वास जैसे अनेक समस्याओं को यथार्थ के धरातल पर पटका है।

सामाजिक समस्या

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। कुछ समाजशास्त्रियों का मानना है कि समाज का अस्तित्व तभी कायम होता है जब इसके सदस्य एक-दूसरे को भली-भाँति जानते हों और उनके उद्देश्य या हित एक समान हो। हम यह जानते हैं कि व्यक्ति अकेला नहीं रह सकता है, वह अन्य व्यक्तियों के साथ किसी न किसी तरह से संबंध बनाता ही है अर्थात व्यक्ति आपस में मिलकर समूह का निर्माण करते हैं और इन समूहों में रहते हुए भी मनुष्य को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है और इन सारी सामाजिक समस्याओं का दर्शन हमें साहित्य में मिलता है। जैसे-जैसे सामजिक विकास होता जाता है, मनुष्य की आवश्यकताएँ वृहत्त से वृहत्तर होती जाती हैं और संस्थाएँ उसे पूर्ण करने में असमर्थ। और तब जो स्थिति उत्पन्न होती है उसे समस्या कहते हैं और विभिन्न चिंतन-मनन के माध्यम से इन समस्याओं का निदान ढूँढ़ा जाता है। संजीव अपने कथा साहित्य में इन समस्याओं से जूझते हैं। इस प्रक्रिया में अधिकांश जगहों पर वे नैरेटर या कथावाचक की भूमिका में अपने विचारों को रखने से नहीं हिचकिचाते हैं। उदाहरण के लिए अगर **'सूत्रधार'** उपन्यास में बाबूलाल के विमर्श पर ध्यान

दें तो थोड़ा अविश्वसनीय लगता है। वह जिस प्रकार से भिखारी ठाकुर को तुलसीदास के नकल से बचने का सलाह दे रहे थे, वह एक गँवई, अल्पशिक्षित व्यक्ति के नहीं लग रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कथाकार स्वयं बाबूलाल की जुबानी बोल रहे हैं। संजीव ने अपने कथा साहित्य में जाति-भेद, छुआछूत, अशिक्षा, शादी-ब्याह संस्कार, सामंती-पूँजीवादी शोषण आदि विभिन्न समस्याओं पर विचार किया है।

जाति भेद

जातियों में विभक्त भारतीय समाज का नग्न रूप हजारों वर्षों से समाज को रुग्ण बना रहा है। लाखों कागजी दावों के बावजूद हम इस संकीर्णता से मुक्ति नहीं पा सके हैं। इस वर्ण भेद की गहरी खाई को भरने में राष्ट्रीय एकता की भावना भी असफल है। जाति-पॉति और छुआछूत आज भी हमारे समाज में बनी हुई है। चरम दरिद्रता और आर्थिक संकट आदि इन्सान को उतना नहीं तोड़ता है, जितना जातिवाद के कारण झेली जाने वाली अपमानजनक स्थितियाँ उसे तोड़ती हैं। इस जाति-भेदाभेद और अपमानजनक स्थितियों को संजीव के परिवार ने अपने पुश्तैनी गाँव बांगरकला में अपने ऊपर झेला है। अवध का यह पूरा इलाका बिगडैल बबुआनों, ठाकुरों के अत्याचारों से पीड़ित था, इसीलिए जातिभेद की इस समस्या को पूरी शिद्धत से उन्होंने अपने कथा-साहित्य में उठाया है। अपनी इस पारिवारिक पीड़ा को उन्होंने **'पिशाच'** नामक कहानी में उठाया है कि किस प्रकार उनका पूरा परिवार महातम बाबा का बंधुआ मजदूर था और उनके उत्पीड़न, अन्याय से परेशान होकर ही उनके परिवार के कुछ सदस्यों का ग्राम से पलायन हुआ था। इसी प्रकार का वर्णन **'भूखे-रीछ'** कहानी में भी मिलता है जहाँ जातिगत भेदभाव का शिकार होकर गरीब दलित गाँव से पलायन के लिए विवश हैं - -"पाँच हज़ार! इतनी रक़म एक साथ ठाकुर पिरथीपाल सिंह ने भी न देखी होगी जो हमेशा उसके जैसे हलवाहों को मजूरी में किनकी, कोदो या सावाँ देते रहें, और जिनके चलते अपना हरा-भरा गाँव, गंगा का किनारा, आमों के बग़ीचे, सबसे देश-निकाला हो गया और भागकर इस धूल-धक्कड़, धुएँ और शोर से भरे कोलियरी अंचल में सर छुपाना पड़ा।"[4]

---

4. संजीव, 'भूखे रीछ', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 97

संजीव ने अपने उपन्यास **'सूत्रधार'** में दिखाया है कि किस प्रकार भोजपुरी लोक रंगकर्मी भिखारी ठाकुर जाति-पॉति के इस भेदभाव से पूरी उम्र जूझते रहें। एक बार उनकी सुंदर कद-काठी को देखकर, ब्राह्मण समझकर एक ब्राह्मण ने उन्हें यज्ञ की वेदी बनाने को दे दिया, परंतु दूसरे ही पल एक अन्य ब्राह्मण ने पहचानते हुए उन्हें फटकारा, कि जाति भी भगवान ही की बनाई हुई चीज है और अपनी जाति छुपाना महापाप है। वहाँ उन्हीं के सामने ही भ्रष्ट हुई यज्ञशाला को दूसरे ब्राह्मण द्वारा गोबर से लिपवाया गया।

वहीं उनकी कहानी **'जब नशा फटता है'** में एक दलित शिक्षित युवक इस बात से साफ इनकार करता है कि जाति-पॉति भगवान की बनाई हुई चीज है। वह अपने कुनबे को संबोधित करता है –"पहली बात ई के जात-पॉति भगवान की बनाई चीज नहीं। जब दो राजाओं और कबीलों में लड़ाई होती थी तो जीतने वाला राजा हारने वाला राजा से गंदा-से-गंदा काम करवाता। एक तो रोजी-रोजगार और दूसरे यह इन दो तरीकों से धीरे-धीरे जाति बनी और मजबूत हुई। बाद में समाज से बिल्कुल काट के फेंक देने के लिए और अपने स्वार्थ के लिए नियम-कानून बनाये गए।"[5] मेहतर समाज के लोग यह महसूस करते हैं कि हिंदू धर्म में उनकी स्थिति पशुओं से भी बदत्तर है, यहाँ गाय की तो पूजा होती है परंतु दलित को गोबरैला समझकर उनसे घृणा। वे हिंदू धर्म छोड़कर इस्लाम स्वीकार करते हैं, परंतु उनके संस्कारों में कोई परिवर्तन नहीं आता है। वहाँ भी उन्हें सैय्यद, शेख या पठान का दर्जा नहीं दिया जाता है। दलित यह समझ जाते हैं कि हर धर्म में जातिभेद है। समाज में अपना महत्व सिद्ध करने के लिए वे हर चौराहे, पूल, स्कूल, मस्जिद, मंदिर, न्यायालय के सामने कचरे और मैले का ढेर फैला देते हैं। सामंती समाज लाठी-एँडे से इसका दमन करता है। एकमात्र खेदु काका भीड़ के सामने अकेले डट जाते हैं। वे समझ चुके हैं कि दलितों के ऊपर धर्म का नशा चढ़ा कर उन्हें भ्रम में रखकर उनसे काम करवा लेना ही सवर्ण समाज की मानसिकता है। धर्म के संबंध में समाजशास्त्री मार्क्स ने कहा है –"यह जनता की अफीम है। धर्म जनता की चेतना को

---

5. *संजीव, 'जब नशा फटता है', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 273*

विकसित होने से रोकता है। धर्म वास्तविक जीवन से मानव का अलगाव कर देता है।"[6]

'चूतिया बना रहे हो!' कहानी में राजनीतिक पार्टियाँ अलग-अलग जातियों की अलग-अलग मीटिंग बुलाती हैं। उनके जाति बोध पर उन्हें गर्व महसूस करवाया जाता है और उन्हें अपनी ही जाति में बने रहने की प्रेरणा दी जाती है, जाति छोड़ने पर उनहें दोगला करार कर उनका हुक्का-पानी बंद करने का फरमान जारी किया जाता है। हम अपने इलाके में भी धोबियों, सोनारों, चमारों, पासवानों, ब्राह्मणों, राजपूतों इत्यादि जातियों की अलग-अलग समीतियाँ और सम्मेलन देख सकते हैं।

'योद्धा' कहानी में संजीव पतनशील सामंती समाज, और अर्जित शक्ति, धन के बल पर प्रभावशाली बनकर 'बभनपने' में समाता जा रहा दलित समाज पर चर्चा करते हैं। दलित समाज जो सदियों से बभनपने का मारा हुआ था आज थोड़ी-सी शक्ति और सामर्थ्य पाकर उन्हीं का अनुकरण करने लगा है, अपने नीचे के पिछड़े दलित भाइयों को वे भूलते जा रहे हैं। उनके संघर्ष में साथ देने के बजाय, उन्हें पंगू बना रहे हैं। यह तथ्य लेखक को परेशान करता है। **'योद्धा'** कथावाचक का बड़ा भाई है जो गाँव में ही रहकर ब्राह्मणों, राजपूतों के शोषण के खिलाफ निरंतर संघर्षमय है, जबकि कथावाचक एस. डी. एम. है। वह ग्रामीण घृणा और द्वेष के वातावरण में ही पलता-बढ़ता है, जबकि इनका पूरा परिवार शहर में रहकर विकसित होता है। गाँव की स्थिति में भी परिवर्तन होता है जहाँ एक ओर लोहरौटी फलता-फूलता है वहीं दूसरी ओर बभनवटी पतनोन्मुखी है।

आर्थिक रूप से संपन्न होने के बाद कथाकार का परिवार समाज में भाईचारा बनाये रखने के उद्देश्य से समाज के होनहार बच्चों को रामलीला के समय *'भरत मिलाप'* के दिन पुरस्कृत करने का निर्णय लेता है। पुरस्कार किसे दिया जाय, जब यह चुनने की जिम्मेदारी कथाकार के बड़े भाई को मिलता है तो वह चुनाव में पढ़ाई-लिखाई और खेलकूद से ज्यादा सामाजिक

---

6. हुसैन मुजतबा, 'समाजशास्त्रीय विचार', प्रथम संस्करण : 2010, पुनर्मुद्रण : 2012, ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 77-78

संघर्ष को महत्व देता है, और पुरस्कार की घोषणा गिरिजा रविदास के नाम की होती है, जिन्होंने चौधरी परिवार के घर से निकाली गई बेटी को आश्रय दिया था, ऊँची जातिवालों ने उनकी मड़ई फूँक दी, पर वे निडर डटे रहे। ऊँची जाति वाले लोग इसे अपना अपमान समझते हैं, वे कटाक्ष करते हैं कि छोटी जातियों के हाथों में पैसा आयेगा, तो ऐसा ही होगा। और वे उत्तेजित होकर भीड़ के शक्ल में कथावाचक के परिवार पर हमला कर देते हैं। जीवनभर जातिवाद के दंश से मानसिक रूप से पीड़ित कथावाचक के भाई को यह शारीरिक चोट मामूली लगती है क्योंकि वे जातिवाद के इस गहरे खाई को पाटना चाहते हैं –"तुम लोग दरारों को लीपने में यक़ीन करते हो, हम भरने में।"[7]

सामंती समाज का ढाँचा भले ही चरमरा रहा हो पर उनके झूठे अभिमान में किसी भी प्रकार की कोई कमी नहीं आई है। वे दलितों का शोषण करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते हैं, उन्हें सताने, पीटने, गरियाने में उन्हें गर्व महसूस होता है। वे गाँव में इसे अपनी प्रतिष्ठा से जोड़कर देखते हैं। शहर में तो वे कोई भी नौकरी करने को तैयार हैं, पर आज भी गाँव में वे दलितों के यहाँ काम करना अपनी प्रतिष्ठा के खिलाफ समझते हैं तभी तो 'पिशाच' कहानी में जब महातम बाबा कथाकार से अपने नाती की नौकरी के बावत् बात करते हैं तो कथाकार गाँव में ही अपने यहाँ उनके नाती को काम देने का प्रस्ताव रखते हैं। इस पर महातम बाबा आग बबूला हो जाते हैं -"तुमरी हिम्मत कइसे पड़ी ई कहने को ...? इहाँ हमरे लड़के तुम्हारे घर काम करेंगे, भूलि गए कि तुम काउ हो और हम काउ हैं।"[8]

निष्कर्षत हम कह सकते हैं कि संजीव के कथा-साहित्य के कुछ प्रारंभिक कहानियों **'पिशाच', 'जसी-बहू', 'भूखे रीछ'** में दलित जहाँ चुपचाप अत्याचार, अन्याय, उत्पीड़न को

---

7. *संजीव, 'योद्धा', संजीव की कथा यात्रा तीसरा पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 279*

8. *संजीव, 'पिशाच', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 317*

सहते हैं, वहीं बाद की कहानियों **'जब नशा फटता है', 'तिरबेनी का तड़बन्ना'** इत्यादि में जूल्म के खिलाफ मूखर होते हैं। उनमें सामाजिक चेतना का विकास होता है।

अस्पृश्यता

प्राचीनकाल से ही हमारे देश में ऊँच-नीच और छुआछूत का प्रचलन रहा है। वर्ण-व्यवस्था के आधार पर तथाकथित कुछ जातियों को अछूत घोषित कर उनके साथ अमानवीय व्यवहार कर उन्हें नारकीय जीवन जीने के लिए बाध्य किया गया। गाँवों में दलितों की बस्ती गाँव से बाहर एक किनारे बसाये गए ताकि कोई सवर्ण उनसे छू न जाए। राह चलते हुए उनके पीछे झाड़ू बाँधे गए ताकि वे अपना पदचिन्ह स्वयं मिटाते चलें और कोई भी सवर्ण उस पदचिन्ह पर चढ़कर अपवित्र होने से बचे। उनका मंदिर जाना निषेध था, क्योंकि उनके छूने से भगवान भी अपवित्र हो जाते थे। प्रेमचंद जी ने **'ठाकुर का कुआँ'** कहानी में दिखाया कि किस प्रकार दलित को कुआँ छूने तथा उससे पानी निकालने का अधिकार नहीं है, पानी के लिए उसे किसी सवर्ण की चिरौरी-मिनती और दया पर निर्भर रहना है ताकि कोई एक बाल्टी पानी उनकी गगरी में डाल दे। ठाकुर के कुएँ से पानी न मिल पाने के कारण बीमार जोखू गंदा पानी पीने को विवश है। **'धरती धन न अपना'** नामक उपन्यास में भी चमरौटी का कुआँ बाढ़ के पानी में डूब जाने पर, वे सवर्ण के कुआँ से पानी प्राप्त नहीं कर पाते हैं और बाढ़ का गंदला पानी पीते हैं। दलितों द्वारा खेतों में उपजाये अनाज के छूने से वे अपवित्र नहीं होते हैं जबकि दलितों को छूने से अपवित्र हो जाते हैं। दलित स्त्रियाँ हवस के लिये उन्हें स्वीकार है पर हवस मिटने के बाद वे अछूत और नीच हो जाती हैं। **'जसी-बहू'** कहानी में सितई पंडित जसी-बहू का सामाजिक और लैंगिक दमन करता है, उसे गर्भवती कर उससे पल्ला झाड़ लेता है। उसके खेत से आम, लौकी, कुम्हड़ा, सरसों तक चोरी कर लिये जाते हैं जब इसकी शिकायत वो प्रधान से करती है तो सितई पंडित जोर-जोर से गालियाँ देने लगता है –"चमाइन सियाइन होइके जाने की हिम्मत कैसे भई हमरे घर में?"[9] उपर्युक्त कथन प्रमाण है इस बात का कि

---

9. *संजीव, 'जसी-बहू', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 124*

सवर्ण समाज दलित समाज के लोगों से छुआछूत का भेद रखता है, उन्हें अपने दरवाजे पर दलितों का आना या उनका स्पर्श कदापि स्वीकार्य नहीं है। **'जब नशा फटता है'** कहानी में मेहतर समाज अपने अधिकारों की मांग को लेकर हड़ताल करता है तो शहर में चारों तरफ कुड़ा-करकट का अंबार लग जाता है। सवर्ण समाज हड़तालो मेहतरों के ऊपर हल्ला बोल देते हैं, परंतु मेहतरों को मारने में, उनको, उनसे छू जाने का डर है, इसलिए पत्थर से मेहतरों पर हमला किया जाता है।

'प्याज के छिलके' कहानी में एक हरिजन युवती कैलशिया मुंशी के खेत से एक प्याज उखाड़ लेती है। खुद बड़ी-बड़ी चोरियाँ कर हजम कर जाने वाला मुंशी इस छोटी-सी घटना को भी बरदास्त नहीं कर पाता है, वह कैलशिया का झोंटा पकड़कर उसे पटकता और पीटता है। हरिजन कैलशिया को छूने के कारण वह अपने हाथ को रगड़-रगड़ कर साफ करता है, स्नान करके, हनुमान चालीसा के पाठ द्वारा अपने को पवित्र करता है। इस प्रकार उनके स्पर्श से अपवित्र हो जाने वाले सवर्ण समाज ने अपने शुद्धी के बहुत से अस्त्र मसलन स्नान, पूजा-पाठ, मंत्र-तंत्र, जाप इत्यादि का स्वांग रचा कर रखा है। **'सूत्रधार'** उपन्यास में भिखारी ठाकुर द्वारा लीपने पर अपवित्र हुए यज्ञशाला को ब्राह्मण तुरंत गंगाजल, गोबर और मंत्र के माध्यम से शुद्ध कर देते हैं।

महात्मा फूले और बाबा साहब डॉ. भीमराव अंबेडकर के अथक प्रयास के बावजूद जातिभेद और छुआछूत नामक बीमारी हमारे देश से नहीं हटी। शहरों की तुलना में ग्रामीण अंचल में यह भेद-भाव अधिक है। दलितों से छुआछूत और भेदभाव करके सारे अधिकारों से उन्हें वंचित कर आर्थिक और मानसिक स्तर पर उनको तोड़ कर उनका शोषण किया जाता है। संजीव के कथा-साहित्य में इस प्रकार की समस्याओं की भरमार है।

सामंती पूँजीवादी व्यवस्था

आर्थिक संपन्नता के कारण सामंती और पूँजीपति वर्ग सामाजिक संचालन की बागडोर अपने हाथों में रखता है। सत्ता और विपक्ष दोनों को राजनीतिक चंदा प्रदान कर उनका मुँह बंद रखता है और देश की जनता का शोषण अपने हित में करता है। संजीव ने अपने कथा-साहित्य

में सामंती और पूँजीवादी व्यवस्था की दमनकारी, अत्याचारपूर्ण और शोषणकारी प्रवृत्ति का सजीव चित्रण किया है।

प्राचीन काल में जब लोगों ने खानाबदोश जीवन को त्याग कर दलों में या कबीले के रूप में रहना शुरू किया, तो बाहरी आक्रमण से अपनी सुरक्षा के लिए एक 'सरदार' या 'राजा' का चयन किया। राजा समस्त भूमि का स्वामी माना जाता था। वह प्रजा के लिए ईश्वरतुल्य था। उसकी वाणी ईश्वर की वाणी थी। अतः राजा की इच्छा और फैसला को ही प्रजा अपना हित समझकर सहर्ष स्वीकार कर लेती थी। किसी प्रकार का विरोध या प्रतिकार का कोई प्रश्न ही नहीं था। कालांतर में यही संस्कार और परंपरा सामंतवादी व्यवस्था की रीढ़ बन गई। यह सामंत ही किसानों, मजदूरों के जीवन के भाग्य विधाता बन बैठे। गाँव में कोई भी कार्य-व्यापार उनकी मर्जी के विरुद्ध नहीं होता था। वे अपने धन और ताकत के बल पर गरीबों का शोषण करने लगे। सामंतवादियों के शोषण की यह परंपरा जमींदार और महाजन का रूप धरकर भी समाज में अविच्छिन्न रूप से व्याप्त रही। ये प्रभुत्वशाली जमींदार या भू-स्वामी मोटे तौर पर ब्राह्मण या राजपूत अर्थात उच्च वर्ण के होते थे जबकि अधिकतर किसान शूद्र थे। चूँकि भू-स्वामी ऊँची जाति के थे और कृषक निम्न जाति के, इसलिए जमींदारों के लिए किसानों पर हुक्म चलाना आसान हो गया। अर्थात वर्ण-व्यवस्था और सामंती संबंधों की एकता ने मिलकर गरीब कृषकों, मजदूरों, श्रमिकों का जीवन दूभर कर दिया। आजादी के बाद इस आर्थिक विषमता को दूर करने एवं गरीब किसानों, मजदूरों को शोषण से मुक्त कराने के लिए जमींदारी उन्मूलन कानून बना। जमींदारों की बहुत-सी जमीनों को लेकर सरकार ने भूमिहीनों में पट्टा बाँट दिया। सरकार द्वारा जमींदारी प्रथा के इस दमन को जमींदार इतनी आसानी से स्वीकार नहीं करने वाले थे। संजीव ने अपने कथा-साहित्य में चरमराती सामंती व्यवस्था में जमींदारों के आक्रोश, अत्याचार, उत्पीड़न और जमींदारी हथकंडों तथा दुष्चक्रों का सजीव चित्रण किया है। उनकी कहानी **'पूत-पूत! पूत-पूत!!'** में सरकार द्वारा गरीबों, दलितों को पट्टे पर दी गई जमीनों को सवर्णों द्वारा पुनः कब्जियाने, बोने और खेतों में लगे फसलों को दलितों द्वारा काटने के नाम पर संग्राम है –"ज़मींदारी उन्मूलन और हदबंदी के हल्ले से डरकर या विनोबा, जे.पी. की बातों से विगलित होकर भूस्वामियों ने इक्यावन एकड़ ज़मीन 'भूदान'

में दे डाली, जो उन्हीं के सामने चमरटोली, मुसहर टोली और अन्य भूमिहीनों में बाँट दी गई। ...धीरे-धीरे समय बीता ...उनकी नज़र अपनी उन ज़मीनों पर जा गड़ी, जिन्हें हड़बड़ाकर उनके पुरखों ने दान कर दिया था। यह क्या बात हुई कि उनकी अपनी ही ज़मीन को उनके ही सामने नीच जाति के लोग जोतें और एहसान तो दूर, मौके-बेमौके बुलाने पर आएँ भी नहीं। फिर हेकड़ी तो देखिए, कहते हैं कि सरकार द्वारा तयशुदा मजूरी पर तैयार हों तो सोचेंगे।"[10] यद्यपि सवर्णों द्वारा जो ज़मीनें दान की गई थीं, वे बंजर थीं। परंतु किसानों के हाड़तोड़ मेहनत ने दो-तीन साल में ही उसे उपजाऊ बना दिया। अब वे ज़मीनें जमींदारों के आँखों में खटकने लगी और उस पर जबरदस्ती कब्जा कर लिया। सरकार द्वारा दलितों के उत्थान के लिये जो कुछ भी दिया गया, वह रास्ता भटककर सवर्णों के दरवज्जे चला गया। शोषण का यह तंत्र पटवारी, प्रधान, सरपंच, कानूनगो, बी.डी.ओ. सर्वत्र व्याप्त है तभी तो **'तिरबेनी का तड़बन्ना'** कहानी में तिरबेनी-बहू जब तिरबेनी से कहती है कि वह सरपंच या प्रधान से बोल-बालकर अपने लिये भी सरकार के द्वारा दी जाने वाली जमीन, गाय-भैंस, ऊँट, रिक्शा इत्यादि की मांग करें तो तिरबेनी कहता है –"उसकी भी असलियत सुन लो। भैंस मिली भीमा को, बँधी है भुल्लरसिंह के दुआर पर। इक्का मिला जमुना को। डेढ़-दो हजार का माल। घोड़ा क्या खरीदता कि पाँच सौ में बेचकर कर्ज चुकाया रघु पाण्डे का, अभी कुछ देना रह ही गया। एक बीघा बंजर मिला लौटन को, चन्नर सिंह कहते हैं कि हमारा है। केतना अनियाव है। हे राम! ई गाँव है, कि बूचड़खाना!"[11]

जमींदारी प्रथा को बचाये रखने के लिए जमींदार किसानों पर अपना दबदबा बनाये रखना चाहते हैं। वरना जमींदार का मूल्य क्या रहेगा? किसी भी प्रकार के प्रतिरोध का वह जोरदार दमन करते हैं। **'प्रेत मुक्ति'** कहानी में सामंतवादी शोषण का विरोध करने वाले

---

10. संजीव, 'पूत पूत! पूत पूत!!', संजीव की कथा यात्रा तीसरा पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 83

11. संजीव, 'तिरबेनी का तड़बन्ना', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 408

जगेसर को पागल करार दे दिया जाता है तथा उसके पिता को बाघ के चारे के रूप में बाँध दिया जाता है, जहाँ उन्हें बाघ खा जाता है। जगेसर के पिता चलित्तर का कसूर यह था कि वे पशु हत्या के खिलाफ थे। बाघ के शिकार के लिये चारे के रूप में बाँधे जाने वाले पाड़ा को वे बार-बार खोल देते हैं। गुस्साकर जमींदार पाड़ा की जगह चलित्तर को ही बाँध देता है। गाँव में मुखिया के आतंक का वर्णन करते हुए डॉ. मुर्तजा डॉ. राहुल से कहते हैं –"यह अस्पताल तो अस्पताल; थाना, कचहरी और आगे तक, मजाल है कोई चूँ कर दे ज़रा उनके खिलाफ़! आज तक कोई यह नहीं जान सका कि उनकी ज़मीन कितनी है और कितनी हैं औरतें! ...जानने का सवाल ही पैदा नहीं होता, हदबंदी के बाद की ज़मीन दूसरों के नाम है, जो उन्हीं के यहाँ मजदूरी करते हैं और औरतें...? साहब, सुनते तो यहाँ तक हैं कि अभी भी यहाँ हर दुलहिन पति से पहले परवान चढ़ती है।"[12] इस प्रकार प्रस्तुत कहानी के उदाहरण से स्पष्ट है कि किसानों पर अपने आतंक को बनाये रखने के लिए मुखिया बागी किसानों की हत्या भी करवा सकता है। सिर्फ सरकारी संपत्ति पर ही नहीं बल्कि प्राकृतिक संपत्ति पर भी वह अपना एकाधिकार समझता है तभी तो वहाँ से बहने वाली नदी पर बाँध बनाकर नदी की धारा अपने खेतों की ओर मोड़ देता है। दलितों, गरीबों के खेत सूखे रह जाते हैं, पशु-पक्षी प्यासे रह जाते हैं, पर उसके खौफ के आगे प्रशासन पंगू है। कथानायक जगेसर बाँध काटता है, गाँव वालों को पानी मुहैया करवाता है, शोषण का विरोध करता है तो उसे पागल करार दे दिया जाता है। उसके उपर उसके पिता चलित्तर का भूत है का अफवाह फैलाकर उसे सर्वेक्षण दल के सामने पेश नहीं होने दिया जाता है।

जमींदारों की शोषण प्रवृत्ति उनके अमानवीय और असामाजिक इरादों का यथार्थ चित्रण **'अहेर'** उपन्यास में भी देखने को मिलता है। उपन्यास में किशनगढ़ प्रतीक है शोषण का। आजादी के तैंतीस वर्ष बाद भी शोषण की भयावह व्यवस्था जारी है। बहुमुखी शोषण के चक्रव्यूह में फँसकर निर्बल पक्ष का जीवन विपर्यय है। यहाँ मनुष्य, मनुष्य का शिकार करता

---

12. संजीव, 'प्रेत मुक्ति', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 323

है। लोगों को लगा था कि आजादी मिलने के बाद उनके अभिशप्त जीवन में सुधार आयेगा। परंतु अंगेजों की जगह अब नवअंग्रेजों ने ले लिया जो पिछड़े इलाकों, गाँवों और अंचलों में शोषण की परंपरा को पीढ़ी दर पीढ़ी चलाते रहे। लोगों का आजादी से मोहभंग हो गया तभी तो उपन्यास भगत सिंह की आवाज में प्रश्न करता है –आजादी किसके लिए? कैसी आजादी? उनके लिए जो महलों में रहते हैं या उनके लिए जो दोहित और शोषित हैं। भगतसिंह के क्रांतिकारी विचारों, आदर्शों का भय सिर्फ अंग्रेजों को नहीं था बल्कि देशी शोषक तबकों को भी था। इसीलिए अंग्रेजों के साथ मिलकर इन मक्कार नवअंग्रेजों ने भगत सिंह का कंठ अवरुद्ध कर आजादी प्राप्त की और सत्तासीन हो बैठे। परिणामतः यह इलाका बाबा आदम के युग में जीता है। पुरानी शोषण नीति और नई गुण्डा-संस्कृति का संगम स्थल है यह। उपन्यास में इनरपति सिंह, उदयभान तिवारी, फौजदार सिंह, रामबुझावन राय जैसे पूँजीपति, कृषक, मजदूर और सामान्य जन का शोषण करते हैं। इनरपति सिंह का बेटा रूपई अपने संपत्ति, रुपये और सत्ता के बल पर दलित हरिया पर अत्याचार करता है क्योंकि दलित हरिया ने इनरपति सिंह की बेटी को पेड़ से अमरूद तोड़कर दे दी थी। हलवाहा इसे बढ़ा-चढ़ाकर रुपई के सामने पेश करता है। ब्राह्मण होने के गर्व में रुपई कहता है –"उस साले बहेतुआ की यह मजाल कि आँखि गड़ावे ठाकुर की बिटिया पर? जिस पत्तल में खाए, उसी में छेद करे?"[13] और वह उसे मार देता है। जमींदार की बेटी को दलित द्वारा पेड़ से आम निकाल कर देने की सजा मौत, जबकि उच्च वर्ग के लोग निम्न वर्ग के नारियों का खुलेआम बलात्कार करते हैं, पर इनका सुनने वाला कोई नहीं। उपन्यास में जय की पत्नी चाँदनी से सवर्ण तबका बलात्कार करता है। शोषक वर्ग नपुंसक और हिजड़ा है क्योंकि वह पिछड़े, गरीब, शोषित, पीड़ित लोगों का खून चूसता है। परंतु पुंसत्व उसमें है जो गरीब, दोहित, शोषित होकर भी संघर्ष का परचम लहराते हैं। उपन्यास में सवर्णों द्वारा बलात्कार पीड़ित चाँदनी के पति की भी हत्या कर दी जाती है, इसके बावजूद वह हार नहीं मानती है और जय के कार्य को आगे बढ़ाने का संकल्प करती है। सरकार द्वारा तय की गई हलवाहों, मजदूरों के लिए न्यूनतम मजदूरी भी पूँजीपति नहीं देना

---

13. संजीव, 'अहेर', प्रथम संस्करण : 2014, ज्योतिपर्व प्रकाशन, गाजियाबाद, पृष्ठ संख्या –104

चाहते हैं। जब हलवाहे इसका विरोध करते हैं तो रुपई उन्हें धमकाता है –"काम पर सीधे तौर पर चले आओ वरना सबकी नसबंदी करवा देंगे। सरकार यहाँ हम हैं तुम्हारी, हम जो कहेंगे, किशनगढ़ में वही होगा।"[14]

सरकार सिर्फ कानून बनाना जानती है, उस पर अमल हो रहा है या नहीं, इसकी उसे चिंता नहीं रहती है। 'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास में जमींदार अवैध रूप से गरीब बिसराम का खेत कब्जिया लेते हैं। मालिक के खेत में भैंस पड़ जाने के जूर्म में मालिक भैंस को अपने खूँटे से बाँध लेते हैं। खेतों के लिए मुकदमा चल रहा है, जिसको खाने के लाले पड़े हों, वो मुकदमा क्या लड़ेगा? भारतीय ग्रामीण व्यवस्था में जमींदारों की शक्ति अपरमपार है, उनके सामने गरीब, किसान, मजदूर, हलवाहा की अपनी कोई हैसियत नहीं है। उनकी नाम मात्र की जमीन कभी भी जमींदारों द्वारा छीनी जा सकती है, उपन्यास में मलारी का पति बाहर रहता है, वह अपने ससूर लंगड़ के साथ घर में रहती है। घर में पुरुष को न पाकर जमींदार लल्लन बाबू मलारी की जो थोड़ी-सी जमीन है, उसे भी हथियाना चाहते हैं। मलारी और परशुराम बहू जैसी गरीब दलित महिलाओं के साथ सवर्ण समाज जब चाहे मनमानी कर सकता है। तभी तो मलारी की भौजाई बिसराम बहू को यह संदेह है कि मलारी का पुत्र ननदोई का है या सेठ का। दसियों खून, पच्चीसियों अपहरण और सैकड़ों बलात्कारों के आसामी डाकू परशुराम अब चुनाव लड़कर राजनीति में सक्रिय होना चाहता है। परंतु डाकू बनने के पूर्व वह जमींदार का हलवाहा था। जमींदारों के लिए गोरू, बछरू, आदमी, औरत उठाता था। गवने के तुरंत बाद बिसराम-बहू को भी वही उठाकर जमींदार के पास ले गया था। इस प्रकार लठैत से डाकू, डाकू से विधायक, विधायक से मंत्री तक का सफर तय करते हैं, परशुराम जी यादव। अर्थात डाकू बनने के मूल में ही जमींदारी शोषण है। उपन्यास का एक और पात्र काली, जमींदारों द्वारा अपनी जमींन हथिया लेने और भाभी के बलात्कार का बदला लेने के लिए डाकू बनता है। अर्थात गरीबी, भूखमरी, शोषण, अत्याचार, उत्पीड़न से परेशान होकर लोग गलत मार्ग चुनने को विवश है। *'ऑपरेशन ब्लैक पाइथॅन'* के इंचार्ज इस समस्या की जड़ में असमान

---

14. संजीव, 'अहेर', प्रथम संस्करण : 2014, ज्योतिपर्व प्रकाशन, गाजियाबाद, पृष्ठ संख्या – 55

भूमि वितरण, बेरोजगारी, ढीला प्रशासनिक व्यवस्था इत्यादि को मानते हैं।

'मरोड़', 'प्याज के छिलके', 'आहट', 'लिटरेचर' आदि कहानियों में पूँजीपतियों के निर्मम अत्याचारों एवं शोषक स्थितियों का यथार्थ चित्रण किया गया है। मजदूरों को उनके कठिन परिश्रम का उचित पारिश्रमिक नहीं मिलता है। यद्यपि मजदूर और किसान उत्पादन का मेरुदंड होता है, परंतु अपना हाड़तोड़ श्रम बेचकर उनको जो मजदूरी के नाम पर भीख प्राप्त होती है, उससे उनका जीवन निर्वाह संभव नहीं है। जबकि उनके द्वारा कमाई गई दौलत पर पूँजीपति, जमींदार ऐश्वर्य लूटते हैं परिणामतः आर्थिक दृष्टि से यह लोग समाज के नीचले स्तर पर पहुँच जाते हैं। उनकी कहानी **'प्याज के छिलके'** में कैलशिया इसी निचले स्तर पर है। वह मुंशी के खेत से एक प्याज उखाड़ लेती है जिसका परिणाम उसे अपनी जान गवाँ के चुकानी पड़ती है। उसकी मौत का राजनीतिक इस्तेमाल सत्तारूढ़ और सत्ताविहीन सभी पार्टियाँ अपने-अपने हितों में करती हैं। सर्वदलीय जाँच कमिटी की माँग होती है। दिखाने के लिए थोड़े दिन पक्ष-विपक्ष के मुठभेड़ का नाटक चलता है, फिर दोनों दल गले मिल जाते हैं। सत्तासीन दल के नेता जगदंबा प्रसाद कहते हैं –"काहे खामखा पड़े हो प्याज के पीछे? म्याँ यह प्याज नहीं द्रौपदी की साड़ी है। साड़ी दुःशासन की तरह खींचते जाओ। नंगा नहीं कर पाओगे।"[15] अर्थात शोषण की जड़ें समाज के तह तक फैली हैं जिन्हें उखाड़ फेंकना असंभव है। लोकतंत्र में साधारण जनता की स्थिति प्याज के उपरी छिलके की तरह रसहीन और बेजान है। इसे छीलकर फेंक दिया जाता है। अर्थात पूँजीपति गरीब किसानों, मजदूरों का शोषण कर उन्हें मौत के गहन अंधकार में ढकेल देते हैं। परधान, मुंशी, एम.एल.ए., एम.पी., पुलिस की मिलीभगत के कारण उसकी मौत की सजा हत्यारे को नहीं मिलती है। यह पूँजीवादी व्यवस्था की त्रासदी है जो पूँजीपतियों की शोषक नीति का खुला चिट्ठा प्रस्तुत करती है।

'मरोड़' कहानी के मास्टर दीनानाथ आर्थिक तंगी के कारण नौकरी के साथ-साथ चंदानिया जैसे सेठ के घर ट्यूशन पढ़ाने को बाध्य हैं। बीबी और बेटी की बीमारी का खर्च

---

15. संजीव, 'प्याज के छिलके, संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 151

प्राइमरी स्कूल की मास्टरी से चलाना संभव नहीं है, इसलिए उन्हें अपना समय सौ रुपये में सेठ के यहाँ गिरवी रखना पड़ता है। लोग उन्हें 'पारस' कहते हैं जो दूसरे के बच्चों को सोना बना देते हैं। परंतु खुद के बच्चे पत्थर ही रह जाते हैं। परिणामतः पूँजीपति अपने पूँजी के बल पर विरासत में एक नया सेठ तैयार करता है जबकि मास्टर दीनानाथ विरासत में अपने ही तरह जिंदगी के रिले-रेस में दौड़ता-हाँफता एक युवक तैयार करते हैं।

भ्रष्ट न्याय व्यवस्था

न्यायपालिका हमारे लोकतांत्रिक व्यवस्था का तीसरा स्तंभ है जिसका कार्य संवैधानिक प्रणाली का पालन करना एवं करवाना होता है। इसका स्वरूप धर्मनिरपेक्ष है। इसका कार्य निष्पक्ष रूप से कानून के दायरे में रहते हुए न्याय करना होता है। हमारे देश में भ्रष्टाचार का कितना ही बोलबाला क्यों न रहा हो, न्याय-व्यवस्था पर लोगों का विश्वास आज भी कायम है। यही कारण है कि अदालत को यहाँ मंदिर तथा न्यायधीश को ईश्वर तुल्य समझा जाता है। न्यायपालिका की जरा-सी लापरवाही किसी बेगुनाह को गुनहगार साबित कर उसे फाँसी के फँदे तक पहुँचा सकती है। जबकि गुनहगार बेगुनाह साबित होकर समाज में फिर से उच्छृंखलता पैदा कर सकता है। उसके ऊपर से कानून और न्याय-व्यवस्था का भय समाप्त होने का खतरा बना रहता है। इसलिए अपेक्षा है कि तमाम विपरीत परिस्थितियों के बावजूद भी न्यायधीश, न्यायपालिका की गरीमा बनाये रखेंगे। परंतु आज कुछ सर्वोच्च न्यायालय के न्यायधीशों के ऊपर भी भ्रष्टाचार के आरोप लग रहे हैं जो अत्यंत दुर्भाग्यजनक और चिंता का विषय है। न्यायधीश दीपक मिश्रा के केस में पूरा देश देख चुका है कि किस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय के चार न्यायधीशों ने प्रेस-कांफ्रेंस करके उनके खिलाफ बगावती तेवर अपनाते हुए उन पर गंभीर आरोप लगाये। आज दिनांक 16 जुलाई 2018 को कलकत्ता हाइकोर्ट के न्यायधीश ने बनगाँव पौरसभा में हुए उच्छृंखलता के मुद्दे पर सत्ता पक्ष को जब फटकार लगाई तो सत्ता पक्ष के वकील कल्याण बनर्जी ने जज की नियुक्तिपद्धति में ही भ्रष्टाचार का आरोप लगाया। प्रतिक्रिया स्वरूप माननीय न्यायधीश ने कहा कि उन्होंने पिछले दस वर्षों से ईमानदारी से इस पद को संभाला है। कोई रिश्वत लेने में विश्वास रखता है कोई देने में। मैं भी जानती हूँ कि

कुछ वकीलों की संपत्ति में कुछ ही समयों में इतनी बढ़ोत्तरी कैसे हो गई है। उपरोक्त घटनाओं से आम जनता के अंदर न्यायिक प्रणाली के प्रति संदेह पैदा होता है जो लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए अशुभ संकेत है। इससे पूर्व भी न्यायधीशों के ऊपर न्याय को बेचने का आरोप लग चुका है। वर्तमान संदर्भ में न्यायालय का भी राजनीतिकरण हो गया है। बहुत सारे केसों में न्यायधीश निष्पक्ष नहीं रह पा रहे हैं। न्याय का मंदिर पूँजीपतियों के पक्ष में मुड़ता जा रहा है। चूँकि न्याय सबूत-सापेक्ष है तो हमारे देश में गवाहों की खरीद-फरोख़्त भी आम बात है।

संजीव ने अपने कथा-साहित्य में **'अपराध', 'घर चलो दुलारी बाई!', 'फैसला', 'तीस साल का सफ़रनामा', 'कठपुतली', 'दुनिया की सबसे हसीन औरत', 'ब्लैक होल', 'सावधन! नीचे आग है'** (उपन्यास) आदि के माध्यम से इस भ्रष्ट न्याय व्यवस्था की पोल खोली है। न्याय-व्यवस्था के प्रहसन पर लिखी गई उनकी पहली प्रसिद्ध कहानी **'अपराध'** है जो इनके प्रारंभिक प्रसिद्धि का मूलाधार भी है। स्वतंत्रता के तीस वर्ष पश्चात् लिखी गई यह प्रथम कहानी है जिसने स्पष्ट शब्दों में वास्तविक अपराधी को पाठकों के सामने प्रस्तुत किया। कहानी में सिद्धार्थ जब अपने शोध विषय 'क्राइम' के लिए आँकड़े इकट्ठा करते हुए इधर-उधर भटकता है तो भारतीय ग्रामों में राज करती हुई खाप पंचायतों से उसका सामना होता है, जो न्याय के नाम पर प्रहसन है। नीचली अदालतों में वर्षों से लटके पड़े मामलों, सबूतों और गवाहों के अभाव में शक्तिहीन जज, बहसबाजी कला में निपुण वकीलों का आपसी द्वंद्व, न्याय की अपेक्षा में व्याकूल साधारण जनता, मजा लुटती हुई नकली गवाहों की टोलियाँ, शिकार फँसाते हुए वकीलों के दलालों से उसका परिचय होता है जो हमारे लोकतंत्र के लिए लज्जा का विषय है। इस कहानी में सिद्धार्थ के पिता सेशन जज हैं और नक्सलवादी करार दिया गया सचिन उसका कॉलेज का मित्र। आजाद भारत की भ्रष्ट और शोषणकारी न्याय व्यवस्था में सचिन को विश्वास नहीं है –"मुझे इस पूँजीवादी, प्रतिक्रियावादी, न्याय-व्यवस्था में विश्वास नहीं है।"[16] सचिन को इन्साफ नहीं मिलता है, सिद्धार्थ के जज पिता स्वयं व्यवस्था की खामियों

---

16. संजीव, 'अपराध', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 88

एवं कमजोरियों को स्वीकार करते हैं –"देश-भर में जाने कितना अन्याय होता है और उसमें से जाने कितने आ पाते हैं हमारे पास और जाने कितनों का सही फैसला कर पाते हैं हम! अब देखो वकील न्याय के देवदूत हैं और इनका चरित्र...! जो जितने भयंकर अपराधी को जितनी जल्दी निरपराध सिद्ध कर दे, वह उतना ही सफल वकील है। फिर जज का दिल और दिमाग़, न्याय की व्यवस्था भी कम करामाती नहीं है। एक कोर्ट से जो हार जाए, दूसरी कोर्ट से जीत जाता है। पेनलकोड की कई धाराएँ तक त्रुटिपूर्ण हैं।"[17] सिद्धार्थ अपने जज पिता के सामने नक्सलाइट करार दिये गए सचिन के लिए दलिलें पेश करता है, वह सचिन को अपराधी नहीं अपितु मानवता के प्रति समर्पित निष्ठावान युवक बताता है। वह अपने पिता को भावात्मक रूप से प्रभावित करने का प्रयास करते हुए बताता है कि सचिन के पिता टी.वी. के मरीज हैं और मरने से पहले उनकी एक ही इच्छा है कि वे अपने पुत्र को निर्दोष देखें। आशा है कि पिता होने के नाते आप दूसरे पिता के दर्द को समझेंगे। जज साहब कहते हैं –"बेटे, हम जिसे न्याय कहते हैं, वह तथ्य-सापेक्ष है, सत्य-सापेक्ष नहीं है। तथ्य का प्रमाण स्वयं में सामर्थ्य-सापेक्ष है, अतः निर्णय लचीला होता है।"[18] सत्ता-व्यवस्था भी न्यायपालिका पर हावी रहती है। सत्ता से न्यायपालिका का टकराव शुरू से होता आया है, ऐसी स्थिति में सच्चे अपराधी की पहचान करना ही एक चुनौती है। कहानी में सचिन की टकराहट भी सत्ता से है, सचिन को फाँसी की सजा दे दी जाती है।

'घर चलो दुलारी बाई!' भी भ्रष्ट न्याय-व्यवस्था की बखिया उधेड़ती कहानी है। पिता और पति के मृत्यु के बाद उसके मायके और ससुराल की संपत्ति को हथियाने के लिए उसे अदालत में मृत साबित कर दिया जाता है। जेठ, देवर, सास, प्रधान, सरपंच, ग्राम-सेवक, बी.डी.ओ. घाट के डोम ने कह दिया – दुलारी बाई मर गई, तो वह मर गई। उसके ससुराल मायके के सारे गवाह गीता और गंगाजल पर हाथ रखकर कसम खा गए कि दुलारी बाई मर

---

17. संजीव, 'अपराध', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 87

18. वही, पृष्ठ संख्या – 87

गई। संजीव ने **'अपराध'** कहानी में ही कहा था कि न्याय सत्य-सापेक्ष नहीं अपितु तथ्य-सापेक्ष है और तथ्य सामर्थ्य-सापेक्ष। यहाँ सामर्थ्य दुलारीबाई के जेठ के पास है जो पंडित से नेता बन गए हैं और उन्होंने सभी सबूतों और गवाहों को अपने पक्ष में खरीद लिया है। उसके ससुराल और मायके वालों के बीच समझौता हो चुका है, जिसके अनुसार मायके की जमीन पर मायकेवालों का तथा ससुराल की जमीन पर ससुराल वालों का अधिकार मान लिया गया है। उसके पुत्र के हत्यारे बाइज्जत बरी कर दिए जाते हैं। इस जमीन ने उसके पिता, पति और पुत्र को उससे छीन लिया और आज अदालत ने उसे भी मृत मान लिया –"16 साल से हर अफ़सर, बाबू, चपरासी के दरवज्जे, दरवज्जे सर पटकती रही हो-हुजूर मैं दुलारी बाई हूँ, बाबू मैं दुलारी बाई हूँ, भैया मैं दुलारी बाई हूँ, मगर तुम्हारी सुनी किसी ने?"[19] अदालत के पेशकार ने भी दुलारी बाई को इस तरह दुरदुराया कि उसकी पेशी लंच के बाद है, मगर पेशी लंच के पहले ही थी। अर्दली ने भी इस प्रकार आवाज लगाई थी कि सिर्फ 'हाजिर हो' सुनाई दे। और न्यायालय की ये मोटी-मोटी दिवारे एक जिंदा सच्च को निगल गईं। वह मजूरी, धतूरी करके पाई-पाई जोड़ कर केस लड़ती है, उसे जज मुश्ताक अहमद से इन्साफ की उम्मीद है क्योंकि वह पहले दुलारी बाई के गाँव में प्राइमरी स्कूल के मास्टर थे, जिससे मिलने की सजा के रूप में दुलारी को घर से निकाला गया और मास्टर को स्कूल से। परंतु आज उनके अपने सपने और सीमाएँ हैं। वह भी दुलारी बाई को पहचानने से इनकार कर देता है और न्यायालय उसे जीते जी फूँक कर चला जाता है। न्याय-व्यवस्था के संदर्भ में समझू काका का यह वक्तव्य महत्वपूर्ण है –"हाँ, मुकदमें के ज़रिए तो तुम उन लोगों से पार पाने से रही। लेखपाल, पटवारी से लेकर ऊपर तक सब गीध की तरह तुम्हारा मांस चुगते जाएंगे। वह कुत्तागिरी उन्हीं बड़कवों के लिए छोड़ दो। इस राज में हमरे तुमरे लिए नियाव नहीं।"[20]

'कठपुतली' कहानी की नायिका कल्याणी दी को उनके पिता ने गरीबी के कारण सेठ

---

19. संजीव, 'घर चलो दुलारीबाई!', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 361

20. वही, पृष्ठ संख्या – 365

को बेच दिया और सेठ ने उन्हें रखैल बनाकर रखा। शादी के बाद उनके पति शंभुपाल के रहते हुए भी सेठ कल्याणी दी का शरीरिक और मानसिक शोषण करता रहा। तमाम सामाजिक अपमान, उत्पीड़न, घृणा और तिरस्कार सहती हुई अदम्य जिजीविषा के साथ अपनी लड़ाई अकेली लड़ती हुई कल्याणी दी एक दिन रस्सी के सहारे झूल गईं। उनकी हत्या को प्रमाण के अभाव में आत्महत्या करार दिया गया था क्योंकि वे बागी हो गई थीं और सेठ के इशारे पर नाचने से इनकार कर दिया था –"अच्छा, ये कठपुतलियाँ अगर नाचने से इनकार कर दें तो?"[21] जिस दिन वे रस्सी से झूलती हुई पाई गयीं उस दिन सेठ और शंभुपाल दोनों एक दिन पहले से ही कलकत्ता गए हुए थे। अर्थात सेठ ने हत्या इतनी सफाई से करवाया था कि कोई सबूत ही नहीं छोड़ा था। प्रमाण और साक्ष्य के अभाव में कानून और न्याय-व्यवस्था इस हत्या को आत्महत्या करार देकर फाइल बंद कर देती है परंतु कथावाचक को ऐसा महसूस होता है कि कल्याणी दी की लाश उससे पूछ रही है –"क्या तुम भी इसे आत्महत्या ही मानते हो?"[22]

'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास में जमींदार ने गरीब बिसराम के खेतों पर अवैध रूप से जबरदस्ती दखल कर रखा है। अदालत में मामला चल रहा है। हमारे देश में अदालतों और न्यायधीशों की भारी कमी के कारण मामलों के निपटान की प्रक्रिया अत्यंत धीमी है। अतः मुकद्दमा वर्षों-वर्षों तक जारी रहता है, कई बार तो फैसला आवेदनकारी की मृत्यु के पश्चात आता है। प्रस्तुत उपन्यास में खेत के मुकदमे के संबंध में जब बिसराम अपने भाई काली से पूछता है कि मुकदमें का का हुआ? फिर तारीख पड़ गई?"[23] अदालतों में तारीख बढ़ाने-घटाने की क्रिया में अर्दली, पेशकार रिश्वत लेते हैं। अधिकांश मामलों में तो गवाहों या मुक्दमाकारी के पेशी के वगैर ही वकील अगली तारीख ले लेते हैं। कुछ दिनों बाद जब

---

21. संजीव, 'कठपुतली', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 119

22. वही, पृष्ठ संख्या – 120

23. संजीव, 'जंगल जहाँ शुरू होता है', पहला संस्करण : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 27

बिसराम फिर से वही प्रश्न काली से पूछता है तो उसका जवाब है –"इस बार तो कोरट ही नहीं बैठी।"[24] इस प्रकार हमारे देश की न्याय-व्यवस्था काफी सुस्त है, जो अपराधियों का मनोबल बढ़ाने वाली है।

'फैसला' कहानी में भी न्याय सामाजिक रूढ़ियों और धार्मिक कट्टरपंथियों के यहाँ गिरवी पड़ी हुई है। जज कट्टरपंथियों के डर से सही फैसला देने में द्वंद्व की स्थिति में हैं। वस्तुतः मुद्दा मुस्लिम समाज के तीन तलाक से संबंधित है, जिस पर वर्तमान समय में बहुत बहस चल रही है और द्वितीय मोदी सरकार ने इस पर रोक लगाने वाले अधिनियम को लोकसभा और राज्यसभा से पास करवाकर, इस पर राष्ट्रपति का अनुमोदन ले लिया है। अर्थात *'तीन तलाक'* को समाप्त करने वाले कानून का निर्माण हो गया है।

आज हमारे पास ऐसे कई मामलें है जहाँ मुस्लिम समाज के पुरुषों ने महज तीन अल्फ़ाज तलाक, तलाक और तलाक कहकर कितनी मुस्लिम महिलाओं का जीवन नर्क बना दिया है। कई बार तो ये शब्द महज गुस्से या नशे में निकले हैं फिर भी महिलाओं को इसका नतीजा भुगतना पड़ा है। वास्तव में तलाक के संबंध में इनके समाज में कोई स्पष्ट नियम नहीं है, सब कुछ कठमुल्लों और ऊलेमाओं के हाथों में है।

कहानी में अहमद काम में परेशानी के कारण गुस्साये मिजाज से घर आता है और दरवाजा खोलने में देरी होने के कारण गुस्से में अपनी पत्नी मुसन्नी को तलाक, तलाक, तलाक कह देता है। बाद में गुस्सा शांत होने पर उसे अपनी गलती का अहसास होता है। वह मुसन्नी को समझाकर इस बात को छुपाना चाहता है, पर शमशुद्दीन यह सब सुन लेता है और जा कर रहमान चाचा को सारी बात बता देता है, फिर तो पंचायतों, ऊलेमाओं और कठमुल्लों के हाथों में उनकी जिंदगी लटक जाती है। उससे जबरदस्ती कोर्ट में तलाक का मामला दर्ज करवाया जाता है, और यह केस जज मेहरुन्निसा की अदालत में आता है। चूँकि यह बहुत संवेदनशील

---

24. संजीव, 'जंगल जहाँ शुरू होता है', पहला संस्करण : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 28

मसला है इसलिए जज मेहरुन्निसा, वकील जावेद साहब और चौबे जी **'कुरान शरीफ'** के चप्पे-चप्पे का अध्ययन करते हैं और **'कुरान शरीफ'** के 35वें अध्याय का हवाला देते हुए कहते हैं –"हलाल चीज़ों में अल्लाह के नजदीक सबसे बुरी चीज तलाक है।"[25]

वकील चौबे इन तलाक के नियमों को खोखला, एकपक्षीय और त्रुटिपूर्ण बताते हुए इसे पुरुष-प्रधान समाज की चालाकी बताते हैं –"अपनी हविश और खुदगर्जी के जनून में जो पुरुष वर्ग कुरानशरीफ तक के तलाक संबंधी निर्देशों में संशोधन कर सकता है, वह, आगे क्या नहीं कर सकता। तीजे, अगर उन्हें रोका न गया तो, तीन तलाक कहकर कोई भी मर्द स्त्री के प्रति, परिवार के प्रति अपनी जिम्मेदारी से कतराकर निकल जाएगा, फिर वह बेलगाम होकर अराजक आचरण करेगा। ...तलाक के प्रति लोग जिस तरह की नीम चालाकी बरतने लगे हैं, वह उस समाज को फिर उसी अराजक और औरतों को फिर उसी नारकीय स्थिति में धकेल देगा।"[26] वर्तमान समय में भी जब प्रधानमंत्री ने तीन तलाक के मुद्दे उठाये तो देश में बहुत हो-हल्ला मचा। कठमुल्लों के तरफ से बहुत से फतवे जारी किए गए। पर मुस्लिम महिलाएँ भी अब शिक्षित और जागरुक हो रही हैं, वे भी अब समाज में पुरुषों के समान बराबरी का दर्जा चाह रही हैं, और शायद प्रधानमंत्री के साथ उनका मौन समर्थन भी है जो उन्हें प्राचीन रूढ़ियों और शोषण से मुक्त कराएगा। कहानी में जज मेहरून्निसा सोचती हैं –"कौन होने देगा औरतों के प्रति इन्साफ! गवाही में भी एक मर्द बराबर दो औरतों के। फिर टुकड़े-टुकड़े में बाँटकर रख दिया है हमें। शादी में शरीयत, तलाक में शरीयत, गुजारे में पर्सनल लॉ और फरेब या कत्ल हो तो आई. पी.सी. मगर कोई भी साफ-साफ बतानेवाला नहीं की इतनी *'एनोमली'* (अन्तर्विरोध) क्यों? ... सपने में भी किसी के तीन बार तलाक बोलने भर से रूहानी, जिस्मानी, जजबाती रिश्ते कहाँ से चटख जाते हैं!"[27]

---

25. संजीव, 'फैसला', संजीव की कथा यात्रा दूसरा पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 393

26. वही, पृष्ठ संख्या – 395

27. वही, पृष्ठ संख्या – 397-98

उम्मीद है कि हमारे देश में तीन तलाक पर नया कानून बनने से जज साहिबा की उपरोक्त चिंता भी दूर होगी और मुस्लिम महिलाओं को भी शोषण से मुक्ति मिलेगी, उन्हें न्याय मिलेगा, उन्हें समाज में पुरुष के समान बराबरी का दर्जा मिलेगा।

स्त्री प्रश्न

भारतीय समाज व्यवस्था में स्त्री और पुरुष एक-दूसरे के पुरक हैं। दोनों के बीच परस्पर आंतरिक सहयोग की भावना ही उन्हें जीवन-प्रगति के पथ पर अग्रसर करती है और सामाजिक संतुलन बना रहता है। परंतु प्राचीन काल से ही भारतीय समाज व्यवस्था पुरुष सत्तात्मक रही है जिसमें स्त्री का अपना स्वतंत्र अस्तित्व नगण्य रहा है। उसे पुरुष की तुलना में समाज में दोयम दर्जा प्राप्त है। यद्यपि वर्तमान समाज में स्त्री उत्थान के लिए बहुत से प्रावधान किए गए हैं जिससे उनकी स्थिति में कुछ परिवर्तन अवश्य आए हैं परंतु यह भी सच्चाई है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्त्री आज भी पुरुषों की तुलना में पिछड़ी है। हमें स्मरण रहे कि प्रेमचंद ने समाज में स्त्री का स्थान पुरुषों से ऊँचा माना था और उन्हें देवी कहकर संबोधित किया था। यद्यपि आज भी हम समाज में शिष्टाचार के नाते स्त्री के प्रति सम्मान अवश्य प्रदर्शित करते हैं परंतु व्यावहारिक दृष्टि से वह शोषित, उपेक्षित और बंदिनी है।

प्राचीन सामंतवादी व्यवस्था हो या आधुनिक पूँजीवादी व्यवस्था, स्त्री की स्थिति में कोई विशेष अंतर नहीं आया है। शोषक के लिए वह कल भी भोग्या थी और आज भी है। प्राचीन सामंतवादी व्यवस्था में स्त्री चार दीवारी के अंदर कैद थी, उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व के विकास के सारे मार्ग अवरुद्ध थे। किसी भी कार्य हेतु उसकी इच्छा-अनिच्छा का कोई महत्व ही नहीं था, वह मान चुकी थी कि उसका जन्म ही सामंतों-जमींदारों-पूँजीपतियों के आखेट के लिए हुआ है। इसलिए मौन रूप से निर्विरोध वह सांमती-पूँजीपतियों के कामुक इच्छाओं के आगे अपने आप को समर्पित कर देती थी। वह समाज में अबला थी और उसकी चीख-पुकार सुनने वाला कोई नहीं था। रक्षक ही भक्षक बने हुए थे। न्याय के ठेकेदार स्वयं उनकी गरीमा कलंकित करने पर तुले थे। संजीव के उपन्यास **'जंगल जहाँ शुरू होता है'** में पुलिस अधिकारी मि. कुमार तहकीकात के बहाने डाकू काली की फूफेरी बहन मलारी से संभोग

करते हैं। उसके अनिद्य सौंदर्य के जाल में सिमट जाते हैं। संभोग के बाद जब डी.एस.पी. कुमार वहाँ से जाने लगते हैं तो मलारी उनसे पूछती है –"बस हो गया? बस हो गई पूछताछ, मिल गई बंदूक! बस इसी के लिए कुत्ते की तरह आए थे दबे पाँव, आपकी औरतें तो इज्जतदार हैं, ऊँची जात के बड़े लोग! हम गरीब नीच जाति की औरतों की क्या इज्जत? खुला दरवाजा है, जो चाहे मुँह मार ले। तुम इतने दिन रुके कैसे रहे –यही आश्चर्य है। बस यही तुम्हारी इंतहाँ थी।"[28] इसी उपन्यास में जोगी नामक पात्र गरीब, बेसहारा महिलाओं का वस्तु के समान खरीद-फरोख्त का धंधा करता है। वह काली सरदार की औरत को भी कहीं बेच देता है। उसकी खुद की पुत्री गुलबिया को लाखू सिंह माल समझकर जबरदस्ती उठा लेता है और जोगी के मुँह पर नोटो का बंडल फेंक देता है।

स्त्री भी स्त्री के शोषण के लिए कम जिम्मेदार नहीं है। सुन्नर पांड़े का हरवाह फेंकन दुसाध की शिक्षित पत्नी पांड़े के घर बेगार में काम-धंधे के लिए आती है। आँगन बुहारते समय वह वहाँ पड़े कुछ बरतनों को उठाकर मॉजने वाली जगह पर रख देती है। पड़ाइन आग-बबूला हो जाती हैं कि दुसाध होकर उसने बाभन के बरतन को छुआ कैसे। एक दिन वह पड़ाइन का हाथ-पाँव मालिश करने से यह कहकर इनकार कर देती है कि –हमसे आपका देह छुआ जाएगा। जिसका परिणाम उसे अपनी इज्जत गँवाकर चुकानी पड़ी –"पांड़े और पड़ाइन ने उस औरत को हाथों से पकड़ रखा था और पांड़े का साला उसे दबोचे हुए था। बाप रे! क्या एक औरत खुद अपने सामने एक दूसरी औरत का बलात्कार करवा सकती है?"[29]

घर की चहारदीवारी, कार्यालय, अस्पताल, स्कूल-कॉलेज यहाँ तक कि जेल की कोठरी में भी स्त्री सुरक्षित नहीं है। भूखे-भेड़ियें की नजर हर जगह अपने शिकार के तलाश में रहती है। जेल में बंद महिला कैदियों को भी यौन-शोषण का शिकार होना पड़ता है। संजीव की

---

28. संजीव, 'जंगल जहाँ शुरू होता है', पहला संस्करण : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 182

29. वही, पृष्ठ संख्या – 92

कहानी **'अपराध'** में जब सिद्धार्थ अपने शोध कार्य के लिए जेल में कैदियों से मिलने और आँकड़े इकट्ठा करने पहुँचता है तो कारा अधीक्षक जेल के विभिन्न सेलों से सिद्धार्थ का परिचय कराते हुए महिला सेल तक पहुँचे तो, उन्होंने मजाकिया लहजे में कहा –"ये पार्टीशन जनाना सेल के लिए है। कोई पसंद आए तो बोलना।"[30] जेल में बंद महिला कैदियों के साथ जेल अधीक्षक या अन्य पुलिस अधिकारियों द्वारा जबरन बलात्कार का यह मुद्दा कोई हास्य का विषय नहीं है। इसी मुद्दे को संजीव ने एक बार फिर अपने उपन्यास **'धार'** में बहुत ही गंभीरता के साथ उठाया है। यहाँ जेल में कैद मैना के साथ जेलर जबरदस्ती बलात्कार कर उसे गर्भवती बना देता है और उसका इल्जाम एक-दूसरे कैदी मंगर पर लगाकर, मार-मार कर उससे उसका गुनाह कबूल करवाता है। वह गुनाह जो उसने किया ही नहीं था। मैना साहसी स्त्री है। वह जेल से छूटते समय जेल में पैदा हुए अपने बच्चे को जेल में ही छोड़कर निकल जाती है। तब जेलर अपना गुनाह छिपाने के लिए मंगर की गोद में बच्चे को सौंपकर उसकी सजा माफ करके उसे जेल से छोड़ कर चैन की सांस लेता है। पर मैना को माँ की ममता खींच लाती है। वह मंगर के पीछे-पीछे जाकर बच्चे को अपना लेती है –"आपको विस्वास न होता हो तो जेल भी चलने को हम तैयार है, हुआँ पूछ लेना। जेल में जेलर हमरा साथ जबर्दस्ती किया, उसी खातिर बच्चा उसका मुँह पे मार के हम चला आया, लेकिन आप हमरा सारा खेल गड़बड़ कर दिया।"[31]

संजीव की कहानियों में सामंतों, पूँजीपतियों अथवा उच्च वर्ग में प्रचलित रखैल प्रथा में स्त्री की दयनीय स्थिति का सजीव चित्रण मिलता है। यहाँ वह घुट-घुट कर जीवन के दिन गिनने को विवश है। अमीरों की कुत्सित इच्छाओं के समक्ष अकेली, असहाय और गरीब स्त्री कितनी लाचार और बेबस है। इसका जीवंत चित्रण संजीव की कहानी **'कठपुतली'** में मिलता

---

30. संजीव, 'अपराध', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 89

31. संजीव, 'धार', पहला संस्करण : 2018, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 12

है। स्त्री का अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है बल्कि पुरुष उसे भोग्या के रूप में अपनी मर्जी के मुताबिक व्यवहार करता है। कहानी में कल्यणी दी एक सेठ की रखैल हैं। पड़ोस के घर का माड़ पीकर बड़ी हुई लड़की के लिए सेठ ने चावल, दाल, तेल, नमक, घी सब उपलब्ध करवाया है। घंटे दो घंटे के लिए सेठ आता है फिर कल्याणी दी को सुना, वीरान और बदनाम दुनिया में छोड़ कर चला जाता है। कथाकार की यह टिप्पणी सर्वथा सार्थक है –"औरत जाति मात्र कठपुतली होती है। कभी माँ-बाप, कभी भाई-बहन की डोर से, तो कभी स्वामी या संतान की डोर से बँधी नाचती ही रहती है।"[32]

आर्थिक

समाज में रहते हुए रोजमर्रा की जरूरतों को पूरा करने के लिए अर्थ की आवश्यकता पड़ती है। अर्थ के बिना व्यक्ति का जीवन निर्वाह दुष्कर है। वर्तमान समय में हमारे व्यक्तिगत एवं सामाजिक संबंध भी अर्थ से ही संचालित होते हैं, अगर आपके पास अर्थ है तो आपकी सामाजिक गरीमा, उपयुक्तता, महत्ता बनी हुई है अन्यथा आप कोने में धकेल दिए जाओगे। हमारी रहन-सहन, वेष-भूषा, चाल-चलन और स्वभाव तक भी अर्थ से ही परिचालित होता है। जहाँ धन का आगमन हमारे संबंधों में खुशहाली और मधुरता लाता है वहीं इसकी कमी हमें चिड़चिड़ा और गुस्सैल बना देती है, आपसी संबंधों में कलह उत्पन्न कर देता है। आज हम अर्थ के आगे ईमान-धरम, रिश्ते-नाते, आपसी प्रेम और सौहार्द तथा आत्मसम्मान तक गिरवी रख चुके हैं। पैसा इन्सान के सर चढ़ कर बोल रहा है। श्रम, यौवन, शरीर, जीवन, आत्मा, आत्मसम्मान सब इसके हद में हैं और इसे प्राप्त करने के लिए मनुष्य किसी भी हद तक गिर रहा है। अपना आर्थिक स्तर ऊँचा करने के लिए कुछ लोग देश के सर्वाधिक संसाधनों पर कुंडली मार कर बैठ जाते हैं। दूसरों तक उस संसाधनों का लाभ पहुँचने ही नहीं देते हैं। इस प्रकार समाज में अमीर और गरीब दो अलग-अलग वर्गों का उदय हो जाता है। और यही

---

32. संजीव, 'कठपुतली', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 118

आर्थिक विषमता सामाजिक विसंगतियों को जन्म देती है। सामाजिक ढाँचा को जर्जर और खोखला बनाकर उसमें संघर्ष की संभावनाएँ जगाती है। विषम व्यवस्था के कारण ही समाज उच्च, मध्य और निम्न वर्ग में विभाजित हो चुका है। आर्थिक दृष्टि से इन वर्गों के जीवन स्तर में काफी भिन्नता है। उच्च वर्ग और अमीर बनना चाहता है, और इसके लिए वह कोई भी हथकंडा अपनाने से नहीं हिचकता है। सरकारें भी पूँजीपतियों के ही पोषक हैं। मध्यवर्ग अपनी आशाओं, आकांक्षाओं की उड़ान पर सवार उच्च और निम्न वर्ग के मध्य त्रिशंकु के समान झूलता रहता है। वह न ही उच्च वर्ग के उड़ान को छू पाता है और न ही निम्न वर्ग से अपनी तुलना ही पसंद करता है। वह उच्चवर्ग में परिणित होने का एक ऐसा स्वप्न लेकर जीता है जो उसके व्यक्तिक और पारिवारिक सुख-शांति को स्वाहा कर देता है। निम्न वर्ग के लोग अपने तमाम कोशिशों के बावजूद लकीर के फकीर रह जाते हैं। इस कारण प्रत्येक वर्ग के अंदर वर्ग-संघर्ष, अत्यधिक धन कमाने की लालसा इत्यादि प्रवृत्तियों का जन्म होता है। संजीव ने अपने कथा-साहित्य के माध्यम से अर्थ के कारण उपजी आर्थिक विषंगतियों, वर्ग-संघर्षों एवं उनकी अलग-अलग मानसिक स्थितियों का सजीव चित्रण किया है।

उच्च वर्ग

वर्ग विभाजित हमारे समाज में धरती, धन और ऐश्वर्य के मालिक हैं उच्च वर्ग के लोग। ये ऊँची हवेलियों, अत्याधुनिक मोटरगाड़ियों, कीमती परिधानों एवं सुस्वादिष्ट भोजन के स्वामी हैं। ये स्वयं काम नहीं करते हैं बल्कि इनके लिए कार्य निम्न वर्ग के लोग करते हैं। जमींदार, उद्योगपति, बड़े-बड़े व्यापारी, उच्च अधिकारी इत्यादि इस श्रेणी में आते हैं। ये निम्न वर्ग का शोषण करते हैं, निम्न वर्ग को उनके परिश्रम का उचित पारिश्रमिक नहीं देते हैं। निम्नवर्ग का यह शोषण प्राचीनकाल से चलता आ रहा है। सामंतों द्वारा दासों को गुलाम बना कर रखा जाता था। उनको बिना कोई पारिश्रमिक दिए उनसे खेती-बारी सहित हवेली के कार्य भी कराए जाते थे। पेट भरने के लिए उन्हें रूखा-सूखा भोजन परोसा जाता था। उनके साथ उच्च वर्ग का व्यवहार भी काफी कठोर और अमानवीय होता था। शोषक द्वारा शोषण का स्तर इतना भयावह था कि शोषित आर्थिक रूप से जरा-सा भी खड़ा न हो पाये और जीवन भर

उच्चवर्ग का टहलुअई करता रहे, और इस शोषण ने अमीर को और अमीर तथा गरीब को और गरीब बना दिया। अमीरों और गरीबों के बीच की खाई दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। देश का सर्वाधिक पूँजी मुट्ठी भर पूँजीपतियों के हाथों में कैद है, और यह आर्थिक संरचना वर्ग-संघर्ष को निमंत्रण दे रही है।

मध्यवर्ग

औद्योगिक विकास के साथ ही भारतवर्ष में मध्यवर्ग का उदय माना जाता है। मध्यवर्ग भारतीय नहीं बल्कि यूरोपीय अवधारणा है क्योंकि भारत में वर्ग नहीं बल्कि वर्ण की अवधारणा थी। अंग्रेजों द्वारा भारत में रेल, डाक, तार इत्यादि लगाया गया। अपने स्वार्थ के लिए ही सही पर अंग्रेजों ने बहुत से भारतीय राज्यों में कारखानों का निर्माण करवाया। उनके कारखानों के लिए आवश्यकता थी सस्ते मजदूरों की। भारतीय गाँवों में छोटे-छोटे किसान बड़े-बड़े जमींदारों के शोषण चक्र में फँसकर खेतीहर मजदूर बनते जा रहे थे, ऐसी स्थिति में उन्होंने शहरों की ओर पलायन किया जहाँ नये-नये कारखाने उनको मजदूरों की टोली में शामिल करने के लिए इंतजार कर रहे थे। उजड़े हुए इन भूमिविहीन मजदूरों ने शहरी क्षेत्रों के मजदूरों की परेशानियाँ बढ़ा दी और हमारे घरेलू कपड़ा उद्योग सहित अनेक कुटीर उद्योग समाप्त हो गए। अंग्रेजों के कारखाने फलते-फूलते गए। इस तरह धीरे-धीरे शहरों के मजदूर, नौकरीपेशेवाले, वकील, पत्रकार, शिक्षक आदि एक नये वर्ग का उदय हुआ। यही मध्यवर्ग में परिणित हुआ। इन सबकी अलग-अलग समस्याएँ थीं, परंतु अर्थ की कमी के स्तर पर सब एक-दूसरे से जुड़े थे। इनका जीवन निम्नवर्ग के अपेक्षाकृत अच्छा था। शिक्षित होने के कारण इन्हें कुछ कठिनाइयों से मुक्ति अवश्य मिली थी परंतु आर्थिक संकट का खात्मा कभी नहीं हुआ। दिन पर दिन बेरोजगारों की फौज खड़ी होती गई। वृहत परिवार के खर्च के बोझ तले मध्यवर्ग दबता गया। उनकी अपनी आशाएँ, आकांक्षाएँ सपने सब दिन प्रतिदिन मूल्यहीन होते जा रहे हैं। इसलिए मध्यवर्गीय लोग आज घुटन, डिप्रेशन और मानसिक तनाव का शिकार हो रहे हैं।

निम्न वर्ग

निम्नवर्ग का जीवन स्तर अत्यंत विपन्न है। दो जून का भोजन भी उन्हें ठीक से मयस्सर नहीं होता है। हाड़तोड़ मेहनत के बाद भी वे कुपोषण, अशिक्षा एवं विभिन्न प्रकार की बिमारियों के शिकार हैं। तन ढकने के लिए सही से वस्त्र उनके पास नहीं है। साधारणतः ये लोग किसी बस्ती में या झुग्गी-झोपड़ियों में तथा रास्ते के किनारे फूटपाथों पर खुले आकाश के नीचे रहते हैं। गाँवों में सवर्णों के खेतों में हलवाही करते तथा शहरों में दूसरों के घरों में झाड़ू-पोंछा करते, ठेला खींचते, बोझ उठाते हुए मुठिया के रूप में, कुली के रूप में हम इन्हें नित्य देख सकते हैं। इनके उत्थान की सारी सरकारी योजनाएँ इन तक पहुँच ही नहीं पाती है और ये सदियों से, नर्क भरी जिंदगी जीने को विवश हैं।

संजीव का संपूर्ण कथा-साहित्य इस वर्ग-विभेद से उपजे अवसाद से पीड़ित जनता के साथ है। वे मानते हैं कि समाज में उत्पन्न हुई इन विसंगतियों के मूल में आर्थिक विषमता है। इसलिए उनके साहित्य में शोषित वर्ग अपने हक के लिए संघर्ष करता नजर आता है। वे भूमि और अर्थ के समरूप आवंटन को देश के विकास और आंतरिक कलह से मुक्ति के लिए आवश्यक मानते हैं। वे बार-बार अपने कथा-साहित्य में शोषित-पीड़ित जनता के साथ खड़ा होते हैं। इनके कथा-साहित्य में आर्थिक चिंतन के स्वरूप को निम्न रूप में देखा जा सकता है –

1. निर्धनता
2. बेरोजगारी की समस्या
3. आजीविका
4. आर्थिक शोषण
5. आर्थिक विसंगतियाँ

1. निर्धनता

हमारे देश की सबसे बड़ी बीमारी है गरीबी। मनुष्य के सारे दुखों की जननी है गरीबी।

आज हमारे देश में बहुत से लोग जीविका के अभाव में दिनों-दिन भूखे रह रहे हैं, उन्हें स्वास्थ्य सेवाओं का लाभ नहीं मिल रहा है, उनके बच्चे कुपोषण का शिकार हो रहे हैं, उनकी पहुँच स्कूलों तक नहीं हो पा रही है, सर छुपाने के लिए उनके पास कोई स्थान नहीं है, साधारणतः ये झुग्गी-झोपड़ियों में, रेलवे किनारे या फूटपाथों पर प्राकृतिक आपदाओं को झेलते हुए किसी तरह जी रहे हैं। अर्थात जो लोग जीवन की न्यूनतम आवश्यकताएँ रोटी, कपड़ा और मकान से महरूम हैं, उन्हें हम गरीबी रेखा के नीचे मान सकते हैं। शहरी क्षेत्रों में आज भी बच्चे कुड़ा-करकट बीनते, कबाड़गिरी करते, दुकानों में कप-प्लेट धोते और जूठन चाटते हुए देखे जाते हैं। कुड़ा में कई प्रकार की रसायनिक प्रतिक्रियाओं के होने के कारण इसे बीनने वाले बच्चे कई प्रकार के बीमारियों से ग्रस्त हो जाते हैं। सामाजिक सुरक्षा के निश्चित उपकरण न होने के कारण इनका शारीरिक और मानसिक शोषण भी होता है। विकास की इस दौड़ में तकनीक को बढ़ावा मिला और रोजगार के अवसर भी कम हुए हैं। खेती में ही ट्रेक्टरों, हारवेस्टरों (कटाई मशीन) का उपयोग हो रहा है। कारखानों में सी.एन.सी. और लेजर कट जैसी मशीनें बहुत से मजदूरों के अवसर को निगल रही हैं। वृहत उद्योग धीरे-धीरे कुटीर उद्योग को निगलते जा रहे हैं। सामाजिक भेदभाव, वर्गीय एवं वर्णीय विसंगतियाँ भी निर्धनता का एक प्रमुख कारण हैं। समाज में गरीबों को तथा इनके पेशे को उपेक्षा की नजर से देखा जाता है। आज हमारे देश में प्रत्येक को भोजन की उपलब्धता सुनिश्चित कराने के लिए **'खाद्य सुरक्षा अधिनियम'** है फिर भी भूख से मौते हो रही हैं। सरकार द्वारा गरीबों को दो रुपया किलो चावल-गेहूँ देने का प्रावधान किया गया है, इसके लिए उचित मूल्य के राशन दुकानों को निर्देष है कि वे गरीबी रेखा के नीचे के व्यक्तियों को कम दाम पर अनाज उपलब्ध करवाए। परंतु सच्चाई यह है कि सरकारी सारी योजनाएँ उन तक पहुँच ही नहीं पाती हैं और भूख से मौते अनवरत जारी हैं। अपने समय के सबसे लोकप्रिय समाजशास्त्री जार्ज सिमेल ने **'गरीब'** शीर्षक नामक अपने लेख में जरूरतमंद एवं दान देने वालों के पारस्परिक अधिकारों एवं जिम्मेदारियों के संबंध में चर्चा की है जिसे मुजतबा हुसैन ने अपने शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया है –"जरूरतमंद को मदद पाने का हक है। यह अधिकार मदद पाने को कम कष्टकर बनाता है, दूसरी ओर दानकर्त्ता की यह जिम्मेदारी है कि वह जरूरतमंद की मदद करे। इस

चर्चा में सिमेल ने अप्रत्यक्ष रूप से प्रकार्यवादी दृष्टि अपनाई है। उन्होंने कहा समाज के द्वारा गरीब की मदद से व्यवस्था को मदद मिलती है ...जिससे गरीब बगावत न कर बैठे। ...गरीब की मदद समाज के लिए है न कि गरीब के लिए। सिमेल ने कहा इस स्थिति में राज्य की भूमिका बढ़ जाती है क्योंकि राज्य अवैयक्तिक रूप से नौकरशाही के उपायों से मदद करता है।"[33] परंतु गरीबी की व्यवस्था से जूझने वाला समुदाय-भ्रष्टाचार, हिंसा, शोषण और राजनीति का शिकार है। भारत चूँकि विकासशील राष्ट्र है अतः दूसरे देशों की तुलना में भारत में गरीबी ज्यादा है।

संजीव के कथा-साहित्य में निर्धनता का चित्रण सहर्ष देखने को मिलता है –"संजीव के कहानी **'लोड़ शेडिंग'** में कथाकार का परिवार का खर्चा बड़ी मुश्किल से चलता है। परिवार में छः सदस्य खाने वाले हैं और कमाने वाला एक, जिसके कारण परिवार में तनाव और कड़वाहट बढ़ती जाती है –"दरअसल संबंधों को हम जी नहीं रहे हैं, महज निबाहे जा रहे हैं। भैया मुझे और शीला को निबाहते-निबाहते थकने लगे हैं ...अंदर से रीतते हुए भैया पिछले दिनों ऊपर से लाउड होते चले जा रहे थे ...घर की समस्याओं पर बोलते ही झुँझला पड़ते हैं। ...इन दिनों वे ड्यूटी और ओवरटाइम से पिसकर आते हैं।"[34] कथकार यह महसूस करता है कि एक व्यक्ति इतने बड़े परिवार का खर्चा नहीं उठा सकता। परंतु और किसी पारिवारिक सदस्य के पास नौकरी नहीं है। परिणामतः भाभी की सुबह की प्रार्थना भी बड़बड़ाहट में बदलती जा रही है।

'महामारी' कहानी में भी गरीबी का यथार्थवादी स्वरूप उभर कर सामने आया है। अशिक्षा, अज्ञानता और गंदगी के कारण वे चेचक जैसी बीमारियों की चपेट में आ जाते हैं।

---

33. हुसैन मुजतबा, 'समाजशास्त्रीय विचार', प्रथम संस्करण : 2010, पुनर्मुद्रण : 2012, ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 178

34. संजीव, 'लोड शेडिंग', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 186-187

यह बीमारी गाँव में महामारी का रूप ले लेती है, जिसके कारण उनकी स्थिति अत्यंत दयनीय हो जाती है। वे इसे सिर्फ देवी प्रकोप समझ कर पूजा-पाठ में लगे रहते हैं। छोहरी खिलाने के लिए भी वे भीख मांग लाते हैं, पचरा गवाते हैं। गाँव की निर्धनता का वर्णन कथाकार ने अपने शब्दों में किया है –"मुझे नहीं याद आता कि दो-चार संपन्न गृहस्थों को छोड़कर किसी के यहाँ भी दोनों जून भोजन बनता हो। आम हमारा सबसे बड़ा सहारा बनता। चटनी या पके आमों के रस से सूखी रोटियाँ हम पेट के हवाले कर लेते। बाद में गुठलियों के ढूह भी हमारे काम में आ जाते। मौसम बीत जाने पर अमावट संचित धन की तरह गाढ़े वक्त जलपान के काम आता। सब्जी में यदि आलू को छोड़ दें, जिस पर हम तीन महीने गुजारा करते, तो सब्जी खाना हमारे लिए विलासिता थी। तेल के खर्च को देखते हुए महँगू काका को बुलवाकर हममें से अधिकांश मुण्डन करवा लिया करते। बुढ़ियाँ, प्रौढ़ाएँ और नौ-नौ साल की बच्चियाँ तक अपने बाल कतरवाकर या मुण्डन करवाकर अजीब-सी शक्ल धारण किए डोलतीं।"[35] कहानी में गरीबी की स्थिति और भी हृदय-विदारक है जब रंगई बहू अपनी छः साल की बच्ची को पिटती है कि जल्दी से खाकर कुछ काम-धंधा देखे। छः वर्ष की बच्ची क्या काम करेगी? माँ के डर से उसने जल्दी-जल्दी रोटी मुँह में ठुँस लिया और बसाती दाल पी ली। लेकिन अगले ही पल उसने सब उल्टी कर दी। परंतु वह जल्दी-जल्दी उस उल्टी को कटोरे में काछने लगी थी, फिर से पीने के लिए। आज भी हमारे समाज में रंगई बहू कहीं न कहीं अपनी बच्ची को भूख के लिए डाँटती मिल जाएगी। अर्थात भूख से हमारी लड़ाई आज भी जारी है।

संजीव ने अपनी कहानी **'लांग साइट'** में दिखाया है कि महिलाएँ स्टीम इंजनों की फेंकी छाई से कोयला चुनकर बेचती हैं और अपना गुजारा करती हैं। इन कोयलावालियों के पक्ष में भाषण देने वाले हराधान दा भी आठ बाई आठ के इकलौते कमरे में रहते हैं जो ऐसबेस्टस की दीवारों और सड़े-गले टीनों से छाया है। इसी प्रकार की कई पंक्तिबद्ध मकान वहाँ है जिसे बाड़ी कहते हैं। किनारे से होकर गंदा नाला बहता है। अपने-अपने दरवाजे के सामने के भाग

---

35. संजीव, 'महामारी', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 236-237

को घेर लेने के कारण यह नाली हर आँगन से होकर बहती है। कोई निश्चित शौचालय की व्यवस्था भी इनके लिए नहीं है –"बाड़ी के लोग सड़ी मछली का झोल और भात या बसाती दाल-रोटी, प्याज खाकर डकारते हैं, उसी डकार में राजनैतिक हुँकार की तरह यदा-कदा इस **'कर्मनाशा'** के जल-विवाद की हुँकार भी शामिल हो जाती है। बाहर सुविधा न होने पर लोग कर्मनाशा में ही मुँह-अँधेरे नित्यकर्म करके पानी डाल देते हैं।"[36]

'चाकरी' कहानी में कथानायक अपने ही बिरादरी द्वारा प्रताड़ित होकर माता-पिता के साथ गाँव छोड़ देता है। हावड़ा में आकर प्लेटफार्म के किनारे रहने लगता है। उसके पिता टी.वी. के मरीज हैं। जीने का कोई सहारा नहीं है। कथानायक अपने दु:खों को याद करता है –"बाबूजी को किसी होटल में टेबुल पर कपड़ा मारने का और माँ को होटल के जूठे बर्तन मलने का काम मिल गया। थोड़ी फूर्सत निकालकर माँ पास के किसी साहब के यहाँ बर्तन मल दिया करती, यह उनकी पार्ट टाइम सर्विस थी और दोनों जगहों से जो बचा-खुचा खाने-पीने का सामान और उतारे गए कपड़े-लत्ते मिल जाया करते, वह उनकी उपरी आमदनी थी।"[37] कथाकार को उतरन में लड़की के कपड़े भी पहनना पड़ता था। अकसर लड़के उसे 'भिखमंगे की औलाद' कहकर चिढ़ाते। पिता की बीमारी बढ़ती जा रही थी, अत: कथाकार ने परिवार का सहयोग करने का निर्णय लिया –"कलकत्ता में मुझ जैसे कितने बच्चे बेलून, बादाम, अखबार बेचने से लेकर बूट पालिश करने और टैक्सियाँ पोंछने का काम कर रहे थे। मैं उनके दल में शामिल हो गया और हम माँ-बेटे ने बाबूजी को बचा लिया।"[38] इस प्रकार गरीबी के कारण कथाकार को गोबरहा खाना पड़ता है, लड़की का उतरन पहनना पड़ता है, प्लेटफार्म के किनारे सोना पड़ता है, बेलून बेचना पड़ता है इत्यादि।

---

36. संजीव, 'लांग साइट', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 243

37. संजीव, 'चाकरी', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 73

38. वही, पृष्ठ संख्या – 75

उन्होंने अपने उपन्यास **'धार'** में संथाल परगना के कोचलांचल की खदानों में काम करनेवाले श्रमजीवी आदिवासियों की गरीबी, भुखमरी, बदहाली एँव अभावग्रस्त जीवन को व्यापक फलक पर परिभाषित किया है। वे कड़ी मेहनत करके कोयला खदानों से कोयला निकालते हैं। यद्यपि यहाँ की अधिकांशतः खदाने अवैद्य हैं। परंतु इन गरीब आदिवासियों का पुलिस, ठेकेदार इत्यादि द्वारा शोषण किया जाता है। इन्हीं परिस्थितियों के बीच खदानों से निकाले गए कोयले को बेचकर वे अपना घर चलाते हैं। कभी-कभी पूरे दिन की कमाई पुलिस ऐंठ लेती है। कोयला बेचने से मिले पैसे से वे बाजार करते हैं –"सस्ता और इफरात ढूँढने के क्रम में वे कई दुकानों से भिखमंगों की तरह दुरदुराए गए। शाम हो गई, तब जाकर भर पाये उनके थैले, आटा, मोटा और थोड़ा महीन चावल के अलग-अलग पैकेट, सस्ती किस्म की दाल, नमक, मसाला, बची-खुची आधी सड़ी सब्जियाँ, आलू, सीता के लिए छापेवाली चटख साड़ी, देशी ठर्रे की एक बोतल अपने लिए और बासी जलेबियाँ बच्चों के लिए।"[39] अर्थात अर्थाभाव के कारण गरीब आदिवासी समाज सड़ी सब्ज्याँ और बासी जलेबी खरीदने को विवश है। परंतु उनमें जीवटता है। उपन्यास की नायिका मैना अपने जीवन संघर्ष में सारे जुल्म का प्रतिकार करते हुए एक सम्मान का जीवन जीना चाहती है –"हम टाटा-बिड़ला बनना कब्भी नई सोचा, सिरिफ भिखारी न बना रए –इसी खातिर कोशिश करता रहा। लेकिन हम गरीब, कंगाल लोग का किस्मत-ई खराब है।"[40] इतनी पीड़ा के बाद भी यह तबका भिखारी नहीं बनना चाहता, किसी की दया नहीं चाहता बल्कि अपने हक और मेहनत की कमाई खाना चाहता है।

'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास में भी संजीव ने थारू जनजाति के लोगों की विपन्न स्थिति का वर्णन किया है। प्राकृतिक दुर्योग, जमींदारों-साहूकारों के अत्याचार, पुलिस-डाकू के अत्याचार एवं प्रशासनिक अर्कमण्यता इनके जीवन को नर्क बनाए हुए है। बिसराम के बच्ची

---

39. संजीव, 'धार', पहला संस्करण : 2018, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 85

40. वही, पृष्ठ संख्या – 102

की मौत पर उसके श्राद्ध के लिए बिसराम बहू का एकमात्र गहना हँसूली बेचा गया –"तीसरा दिन था और घर में एक दाना तक नहीं। ये धान के बीज डालने के दिन हैं। मगर कहाँ के बीज, कहाँ के खेत? बीज होते भी तो क्या होता? खेत तो बंधक पड़े हैं मलिकार के यहाँ।"[41] इस प्रकार इनके कथा-साहित्य के पात्रों में दारुण गरीबी है परंतु इस गरीबी से लड़ने का उनमें एक अदम्य साहस है। चाहे वह **'धार'** की मैना हो या **'मरोड़'** के मास्टर दीनानाथ। वे हार नहीं मानते हैं, अपनी परिस्थितियों से लड़ते हैं।

2. बेरोजगारी की समस्या

बेरोजगारी मध्यवर्ग की एक प्रमुख समस्या है। हम प्रत्येक वर्ष ग्रेज्यूटों की एक फौज खड़ी करते हैं परंतु जीविका के लिए उन्हें रोजगार उपलब्ध नहीं करवा पाते हैं जिससे युवाओं में असंतोष व्याप्त होता है। औद्योगिकरण और तकनीकि विकास के इस दौर में नये रोजगार की सृष्टि न के बराबर हो रही है और पुराने रोजगार भी धीरे-धीरे समाप्त होते जा रहे हैं। फैक्ट्रियों में लगाई गई एक-एक मशीनें दस-दस मजदूरों का कार्य कर देती है। भारत में सबसे ज्यादा बेरोजगारों की संख्या शिक्षितों की है। अधिकांशतः शिक्षित मध्यवर्ग और निम्नमध्यवर्ग से आते हैं। जो थोड़े बहुत रोजगार उपलब्ध भी हैं, उनमें भ्रष्टाचार, सिफारिश और रिश्वत का बोलबाला है। अतः अपेक्षाकृत कम शिक्षित होते हुए भी पैसे के बल पर उच्चवर्ग इनकी नौकरियों को हथिया लेते हैं। जिसके कारण मध्यवर्ग का जीवन अशांति, कलह, असंतोष और संघर्ष से भरा होता है। बेरोजगारों की संख्या ग्रामीण किसानों में भी है। यहाँ वर्ष में सिर्फ आठ मास ही खेती का काम होता है, बाकि चार महीने इन्हें बेकारी में गुजारना पड़ता है। इसी से किसानों को बचाने के लिए सरकार की तरफ से मनरेगा चलाया गया, जो बेरोजगारों को नब्बे दिन रेाजगार की गारंटी देता है। परंतु इसमें भी भ्रष्टाचार व्याप्त है। सिर्फ नये रोजगार की सृष्टि न होना ही बेरोजगारी का एकमात्र कारण नहीं है अपितु पुराने उद्योग-धंधों का बंद हो

---

41. संजीव, 'जंगल जहाँ शुरू होता है', पहला संस्करण : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 22

जाने से भी बेरोजगारी बढ़ रही है। किसी कारखाने के बंद हो जाने से कोई व्यक्ति पैंतालीस या पचास वर्ष की उम्र में बेरोजगार हो जाता है, इस उम्र में वह कोई नई नौकरी भी नहीं तलाश पाता है और पारिवारिक बोझ से दबा रहता है। अतः बेकारी की यह स्थिति असहनीय है। इस तरह हम देखते हैं कि संजीव के कथा-साहित्य में बेकारी की समस्या और बेरोजगारों की मनःस्थिति का यथार्थवादी चित्रण मिलता है।

'सावधान! नीचे आग है' उपन्यास में झरिया स्थित चंदनपुर कोयला खदान जो कि एशिया का आधुनिकतम कोयला खदान है, का वर्णन है परंतु यह खदान भी वहाँ के लोगों को रोजगार उपलब्ध नहीं करवा पाता है। खदान में ठेकेदारी प्रथा है। खदान के राष्ट्रीयकरण होने पर भ्रष्टाचार सर चढ़ कर बोलता है, और रिश्वत लेकर बाहरी लोगों को स्थायी कर दिया जाता है जबकि असल मजदूर बेकार हो जाते हैं। वे ठेकेदार के अंदर काम करने को बाध्य होते हैं। चंदनपुर खदान में एप्रेंटीस के लिए आए ऊधम सिंह जब एक रायपुरिया मजदूर से पूछता है कि क्या वह चंदनपुर खदान में काम करता है तो वह कहता है –"नहीं सरदार जी, वैसा भाग कहाँ! हम तो अतनू बाबू के ठीका में काम करते थे। अब तो ऊहो...। ...पहले हमरे बाप के बाप-काका लोग चंदनपुर कोलियरी शुरू किए थे। हम तो हिंये पैदा हुए। अपना देस-मुलुक छुड़ा के अतनू बाबू के पहिले के ठीकेदार नाथ बाबू हियों जंगल में ला के छोड़ गए। अब कोई नहीं पूछता। ले-दे के अतनू बाबू का पोखरिया खाद का ठीका है। ऊ भी अब बंद हो रहा है। हम का खाएँ और का खिलाएँ बाल-बच्चों को...?"[42]

'धार' उपन्यास में बिहार के संथाल परगना के कोयला खदानों में काम करने वाले संथाल आदिवासियों के श्रम और शोषण की व्यथा है। कारखानों और कोयला खदानों की भरमार होने के बावजूद यह क्षेत्र रोजगार के मामले में बीहड़ ही है। यहाँ के लोगों के पास जीविका का कोई निश्चित साधन नहीं है। ठेकेदारी, अवैध खनन, भ्रष्टाचार, शोषण इत्यादि

---

42. संजीव, 'सावधान! नीचे आग है", पहला पेपरबैक्स संस्करण : 2018, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 17

यहाँ की विसंगतियाँ हैं, यही कारण है कि यहाँ के गरीब लोग अवैध रूप से कोयला का खनन करके उसे बेचकर अपना जीवन निर्वाह करते हैं। उनके पास कोई निश्चित, सुरक्षित, वैध और सम्मानजनक कार्य नहीं है। रोजगार के अभाव में उनकी आर्थिक दुर्दशा और विवशता को देखकर शर्मा सोचते हैं –"सच कहती है मैना बेरमो, गोमिया, भुरकुंडा, पतरातू, बरकाकाना और वहाँ मिहिजाम, जसीडीह, गोड्डा –इतने कारखाने इतनी फैक्टरियाँ पर आदमी को रोजगार नहीं।"[43]

हमारे देश में बेरोजगारी की हालत यह है कि एक चपरासी के पद के लिए भी कई उम्मीदवार सिफारिश और रिश्वत लिए तैयार है। बेकारी उन्हें नौकरी के लिए अनैतिक तरीका अपनाने को भी मजबूर कर देती है तभी तो पंडित बिजली साहब से शिकायत भरे लहजे में कहते हैं –"अरे ले-देकर एक चपरासी की नौकरी ही तो माँगी थी हमने अपने भतीजे के लिए, कोई लाट-गवन्नरी तो माँगी नहीं, लेकिन ऊ भी नहीं...हमरा मुँह का रोटी छीन के आदिवासी को दिए। ...हम तो सौतेले हैं आपके और सरकार के, असल तो वोई लोग हैं।"[44]

'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास में काली नामक एक युवक पहले चीनी मिल में काम करता था, परंतु मिल बंद हो जाने के कारण वह बेरोजगार हो जाता है, ठेकेदार के यहाँ काम करता है, ठेकेदारी का पैसा देने के लिए ठेकेदार बेगारी भी करवाता है। रोजगार की तलाश में वह इधर-उधर भटकता है। घर में अन्न का एक दाना भी नहीं है। ऐसी स्थिति में उसे डाकू परशुराम के गिरोह में शामिल होने तथा जोगी के साथ स्मग्लिंग का न्यौता मिलता है। वह फिर भी अपने आप को संभालता है। ठेकेदार सुलेमान खाँ के यहाँ फिर से हलवाही का काम पकड़ता है परंतु सुलेमान खाँ भी काली को ठीक से मेहनताना नहीं देता है जबकि डाकू परशुराम को डर से पंद्रह हजार रुपया दे देता है। अतः भूख की आग और रोजगार की कमी के कारण काली भी डाकू बन जाता है। अंत तक एक युवा कुमार्ग कर जाने से बचना चाहता

---

43. संजीव, 'धार', पहला संस्करण : 2018, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या –128

44. संजीव, 'पाँव तले की दूब', प्रथम पॉकेट बुक्स संस्करण : 2005, पुनर्मुद्रण : 2009, 2013, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, पृष्ठ संख्या –23

है परंतु बेरोजगारी उसे कुमार्ग पर धकेल देती है।

'चुनौती' कहानी में कामतानाथ एक कारखाने में 'स्लीपर्स' के डिजाइनिंग और कास्टिंग मिस्त्री है। उनके ऊपर रिटायर्ड पिता, बेरोजगार जवान बेटा, अनब्याही बेटियाँ और बीमार पत्नी का बोझ है। कारखाना बीमार हो चला है। बेटे को नौकरी अभी तक नहीं मिली है। कारखाने में नई बहाली की कोई आशा नहीं है। बेटे को नौकरी दिलाने का उसे एक ही तरीका नजर आता है –"बहुत गुनने के बाद एक अवलंब उन्हें सूझता है। शायद यही उपाय रह गया है। काम करते-करते मर जाओ, तब बाप की जगह बेटे को नौकरी...।"[45] कामतानाथ का यह बयान दर्शाता है कि रोजगार की स्थिति हमारे यहाँ क्या है। कितने पिता अपने पुत्र की नौकरी के लिए प्राण तक देने को तैयार हैं। परंतु मैनेजमेंट निष्ठुर है। मानवतावादी दृष्टिकोण से अब मजदूरों को नहीं देखा जा रहा है। इसलिए पिता के स्थान पर अब पुत्र को नौकरी नहीं मिल रही है। कारखाना अब पूँजीपति अपने शर्तों पर चलाते हैं।

'फुटबॉल' कहानी में संजीव ने कारखाने में होने वाले भर्तियों में भ्रष्टाचार को उजागर किया है। एक बूढ़ा पिता अपने बेरोजगार पुत्र की नौकरी के लिए साहब के सामने गिड़गिड़ाते हैं। साहब के तरफ से उस बूढ़े मजदूर से उसके पुत्र की नौकरी के लिए पंद्रह हजार रुपये रिश्वत माँगे जाते हैं। बूढ़े मजदूर को यह महसूस होता है कि रिश्वत के अभाव में उसका पुत्र बेरोजगार ही रह जायेगा। क्योंकि इतना पैसा तो कभी उसने देखा ही नहीं। भ्रष्टाचार और बेईमानी करके फूटबॉल कोटे से भर्ती हुआ सोमनाथ आज प्रबंधक है और आज वही बेरोजगार युवकों का शोषण कर रहा है। और बूढ़ा मजदूर के बार-बार गिड़गिड़ाने पर उसके बेटे को फुटबॉल कोटे में टेस्ट देने को कहता है –"तो ऐसा करो, परसो प्लेयर्स टेस्ट है, तुम्हारे बुढ़ापे पर रहम खाकर इसे भी एक चांस दे देते हैं!"[46]

---

45. संजीव, 'चुनौती', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 434

46. संजीव, 'फुटबॉल', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 265

संजीव ने अपनी पहली कहानी **'क़िस्सा एक बीमा कंपनी की एजेंसी का'** में ही शिक्षित बेरोजगारों की समस्या को उठाया है। हमारे देश में जिस अनुपात में शिक्षित बेकारों की संख्या बढ़ रही है। उस अनुपात में रोजगार उपलब्ध करवाना लगभग असंभव है। रोजगार का दायरा सीमित है। इसलिए कुछ युवक-युवती फ़ीयरलेस कंपनी के एजेंट बनकर अपनी जीविका चलाते हैं। पर इस प्रकार के मार्केटिंग के कार्य में हमेशा निश्चित टार्गेट पूर्ण करने पड़ते हैं। वेतन की जगह कमीशन का प्रावधान है। इतनी प्रतिस्पर्द्धा के बाद भी एजेंटों का मेला लगा हुआ है। कथानायक सोचता है –"बरसात में उगने वाले छत्रकों की तरह ...एजेंटों की पलटन देखने पर मुझे भ्रम होता कि कहीं बीमा कराए व्यक्तियों से एजेंटों की संख्या ही अधिक तो नहीं है!"[47] प्रायः एक व्यक्ति के पीछे दो-दो, तीन-तीन एजेंट पड़े हुए रहते हैं। ग्राहक पकड़ने के लिए इन एजेंटों को ग्राहक के रूप-रंग, शौक आदि का पता लगाकर उसके रंग में ढलने का स्वांग करना पड़ता है। अतः बेरोजगारों को कुमार्ग पर भटकने से बचाने के लिए रोजगार के साधन उपलबध करवाने होंगे। उनकी अन्य कहानियाँ जैसे **'चाकरी', 'आप यहाँ हैं'** इत्यादि में भी बेरोजगारी की समस्या को उठाया गया है।

3. आजीविका की समस्या

जहाँ एक ओर उच्च वर्ग के लोगों में धन कमाने की जिद्द होती है, वहीं मध्यवर्ग और निम्नवर्ग अपनी रोजमर्रा की जरूरतें – रोटी, कपड़ा और मकान – की पूर्ति के लिए धन कमाने को संघर्ष करता है। उच्च वर्ग के लोग धन कमाने के लिए इसी मध्य और निम्न वर्ग का शोषण करते हैं। मनुष्य को अर्थ कमाने के क्रम में बहुत सारी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। सवर्ण शोषण और भुखमरी से परेशान ग्रामीण युवा का शहरों की तरफ पलायन हुआ। **'जसी-बहू'** कहानी में जसी धन कमाने के लिए ही शहर जाता है खुद संजीव का परिवार पश्चिम बंगाल के कुल्टी में अर्थाजन के लिए ही आया था।

---

47. संजीव, 'क़िस्सा एक बीमा कंपनी की एजेंसी का', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करणः 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 13

'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास में जनजातीय जीवन की त्रासदी का चित्रण है। बिहार के पश्चिम चंपारण के जंगली क्षेत्र में रहने वाले थारू आदिवासियों के पास रोजगार का कोई निश्चित साधन नहीं है। वहाँ की भौगोलिक परिस्थितियों ने भी यहाँ का जीवन जटील बना दिया है। थारू जनजातियों को यहाँ के जंगलों में अटूट आस्था है। मजदूरी में भी ठेकेदारों का शोषण है। उपन्यासकार लिखते हैं कि जंगलों में बेंत है हाथ में हुनर है, झुड़ी, खाँची तो बना ही सकते हैं वह, लेकिन उसे लाने कौन देगा? बेंत का एक ठेकेदार एक जल्लादें कहाँ से ले जाए रकम, घूस पाती के लिए। अर्थात हाथ में हुनर और विरासत में जंगल मिलने के बावजूद इनका आर्थिक स्तर गिरता जा रहा है क्योंकि जंगलों पर वन विभाग का कब्जा हो गया है इनकी अरण्यमूखी संस्कृति संकट के दौर से गुजर रही है। भ्रष्टाचारी जंगलों को अवैध रूप से काट-काट कर फल-फूल रहे हैं और जंगल के असली मालिक को अब जंगल से पत्ता तोड़ने के लिए भी मोहताज कर दिया गया है। इसीलिए तो 'पाँव तले की दूब' उपन्यास में किस्कू सरकारी नीतियों की आलोचना करता है –"साहब, सरकार तो बहुत मेहरबान है न हम पर? ...ये ई मेहरबनी है न कि जिस छोटा बुरू के जंगल शालवनी से हमरा बाप-दादा काठ काट के लाता रहा, अब हमरा लड़का-जनाना दतुअन भी नहीं तोड़ने सकता?"[48] इसलिए इनके सामने अर्थाजन का एक बड़ा संकट खड़ा हो गया है। अरण्यमूखी संस्कृति, उत्सवधर्मिता और शराबखोरी से बाहर निकालकर पढ़ाई-लिखाई से जोड़कर इन्हें समाज की मुख्यधारा में शामिल करना हमारे लिए एक चुनाती है।

'धार' उपन्यास में संथाली आदिवासी अवैध कोयला खदानों से कोयला काटकर, उसे बाजार में बेचकर अर्थाजन करते हैं। कुछ आदिवासी तेजाब फैक्ट्री में, तो कुछ जमींदारों के खेतों में तथा कुछ पशुपालन का कार्य भी करते हैं। इन सारे कार्यों में जमींदारी शोषण के कारण इनका जीवन अभावग्रस्त और दयनीय है। कोयला के खजाने पर बैठे ये आदिवासी कंगाल और दरिद्र हैं। उपन्यास की नायिका मैना उस तेजाब फैक्ट्री का विरोध करती है जिसने

---

48. संजीव, 'पाँव तले की दूब', प्रथम पॉकेट बुक्स संस्करण : 2005, पुनर्मुद्रण : 2009, 2013, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, पृष्ठ संख्या –32

वहाँ के जल, जीवन और वायु में भी जहर घोल दिया है। उपन्यास में संजीव ने शर्मा के द्वारा आदिवासियों के धर्नाजन के लिए कोआपरेटिव माइनिंग की शुरुआत करवाई है। आदिवासियों के कड़े मेहनत और अथक प्रयास के बल पर जनखदान फलता-फूलता है और इसी के सहयोग से अस्पताल, स्टोर, स्कूल और प्रयोगशाला खोले जाते हैं। इस जनखदान की शुरुआत में शोषक, ठेकेदार और पुलिस के द्वारा बाधा देने का बहुत प्रयास किया गया पर आदिवासियों की एकता और दृढ़संकल्प ने सारी बाधाओं को छाँट दिया। इसीलिए तो जनखदान के निर्माण पर परमिशन न होने का रौब दिखाकर रिश्वत माँगने आई पुलिस को शर्मा कहते हैं –"हम हमेशा हारते रहे हैं साहब, लेकिन अब नहीं। हम जानते हैं कि आपके संस्कार ही गंदे हो गए हैं, लेकिन हम फिलहाल आपसे लड़कर अपनी शक्ति नष्ट नहीं करना चाहते, हमें उम्मीद है कि आप कोयला-चोरों में और हममें जो बुनियादी फर्क है उस पर गौर करेंगे। गौर करेंगे कि कोयला-चोरों का दल तो आपको देखते ही भाग खड़ा होता है, मगर ये क्यों नहीं भागे। जब मन में दृढ़ आत्मविश्वास और पवित्र संकल्प हो तभी यह निर्भयता प्राप्त होती है।"[49]

'अहेर' उपन्यास में दलितों के पास धर्नाजन का कोई साधन नहीं। उनके पास खेती, रोजगार, आवास कुछ भी नहीं है। लोमड़ियों और शाहियों के शिकार के अलावा प्रकृति से मिलने वाले फल, शकरकंद, गन्ना इत्यादि इनके आहार हैं। त्योहारों इत्यादि के मौकों पर भी कर्ज लेने वाला यह दलित समाज दोहन-शोषण, अत्याचार-अन्याय से पीड़ित है। लेखक ने किशनगढ़ के माध्यम से पूरे हिंदुस्तान में दमनचक्र के राज को संकेतित किया है।

4. आर्थिक शोषण

स्वतंत्रता पूर्व जो आर्थिक समरुपता और स्वच्छ राजनीति का स्वप्न देखा गया था वह आज चकनाचूर हो गया है। गांधी के सपनों का भारत कहीं खो गया है। आजादी मिलने के

---

49. संजीव, 'धार', पहला संस्करण : 2018, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या –136

बाद भी शोषक का सिर्फ रूप बदला है। पहले शोषक विदेशी थे अब देशी हैं। शोषण की प्रक्रिया में कोई परिवर्तन नहीं आया है। पिशाच कहानी में कथावाचक का पूरा परिवार महातम बाबा का 'बंधुआ मजदूर' था। काका महातम बाबा के हलवाही करते थे तो अइया बेगारी। कथावाचक के परिवार के अतिरिक्त भी कई परिवारों को इस ऐयाश, लंपट तथा हृदयहीन सामंत ने तंगोतबाह कर दिया था। बाद में गाँव की बागडोर रमेशर के हाथ में चली जाती है। अब वह ग्राम प्रधान बनकर गाँव की तथा बाबा की जमीनें हड़पता है। अर्थात शोषक का सिर्फ चेहरा बदलता है। कहानी के एक पात्र दूबे कथाकार को परिस्थितियों से पलायन नहीं अपितु संघर्ष का संदेश देता है –"यहाँ तुम लोगों को हर मर्ज़ की बस एक ही दवा सूझती है ...भाग जाना। अब यहाँ ऐसी हालत है कि रमेशर के किसी गलत काम की मुखालिफ़त के लिए आदमी ढूँढे नहीं मिलते। इस भेड़नुमा गाँव के राम ही मालिक हैं अब। बाबा में एक कुटिल पुरोहित और एक मग़रूर सामंत भर था, जबकि रमेशर में उस पुरोहित और सामंत के अलावा एक काइयाँ मुनीम और एक मक्कार बनिया भी है। तुम बच्चे से जवान, जवान से बूढ़े होकर मर जाओगे, लेकिन यह पिशाच यूँ ही नहीं मरनेवाला।"[50]

आज पूँजीपति श्रमिकों को उचित पारिश्रमिक न देकर उनका आर्थिक, मानसिक शोषण कर रहा है तथा स्वयं उनके श्रम का लाभ उठाते हुए ऐशोआराम की जिंदगी व्यतीत कर रहा है। अधिकांशतः कारखानों, कार्यालयों, अस्पतालों, स्कूलों, कॉलेजों आदि में ठेकेदारी प्रथा आ जाने के कारण समान काम के लिए समान वेतन तो सपना हो गया है। **'धनुष टंकार'** कहानी में निर्मल बाबू ठेका मजदूरों की स्थायी बनाने की लड़ाई शुरू करते हैं, उन्हें जेल में डाल दिया जाता है। इस आंदोलन को अनपढ़ सुरसती आगे बढ़ाती है। वह समान कार्य के लिए समान वेतन का मांग करती है, आमरण अनशन पर बैठती है। परंतु मैनेजमेंट और मजदूर-यूनियनों के मिलीभगत से ठेका मजदूरों में फूट डाल दिया जाता है और लिपा-पोती करके आंदोलन मंत्री जी द्वारा समाप्त कर दिया जाता है –"तो क्या यह सारा ताम-झाम इसलिए है कि इन

---

50. संजीव, 'पिशाच', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 321

मजदूरों की दुकानें चलानेवाली यूनियनों का कारोबार चलता रहे, बिना किसी स्थायी हल के, जीत के जश्न पर जै-जै कार होती रहे। सबसे ज्यादा श्रम देनेवाला ठेकेदार-मजूर सबसे कम वेतन और असुरक्षित नौकरी बनाए रखने के लिए पीछे-पीछे लगे रहे। इनको नोचते रहें ठेकेदार, नोचते रहें साहब।"[51] कहानी के आरंभिक दौर में ही झम्मन नामक मजदूर का कारखाने में लूज शंटिंग से धक्का खाकर एक्सीडेंट होता है और वह अस्पताल पहुँच जाता है। परंतु उसके इलाज का खर्च कंपनी और ठेकेदार दोनों नहीं देते हैं। ठेकेदार अपने खाते से झम्मन का नाम काट देता है। यह विभिन्न कारखानों के आम दृश्य हैं, पूँजीपति अपने मैनेजरों और सुपरवाइजरों के साथ भी इस प्रकार की धोखाधड़ी करते हैं तो अशिक्षित मजदूर की क्या विसात। मील मालिक उन्हें अपना कर्मचारी मानने से ही इनकार कर देते हैं। प्रस्तुत कहानी में झम्मन की स्त्री सुरसती को पिग आयरन की लोडिंग अनलोडिंग का काम ठेकेदार अहसान जता कर देता है। ठेकेदार इन स्त्री श्रमिकों का उपयोग अपने ठेके प्राप्त करने में भी करता है।

'भूखे रीछ' कहानी में रामलाल को कारखाने की मजदूरी से जो अर्थ प्राप्त होता है उससे उसके परिवार की परवरिश नामुमकिन है। आर्थिक अभाव और पारिवारिक चिंता में डूबा हुआ रामलाल यहाँ तक सोच लेता है कि कारखाने में कोई मरता या बीमार भी नहीं पड़ता है कि उसे उपरटैम का काम मिले। यह मजदूरों के मेहनत का सही मेहनताना न देने का नतीजा है। एक दिन उसके साथी मास्टर को हार्टअटैक आता है और वह अस्पताल में भर्ती हो जाता है। रामलाल उसका भी काम ओवर टैम के रूप में करता है –"रोज-रोज आठ घंटे ड्यूटी, और आठ घंटे ऊपर टैम और साथ ही बंगले का छिटपुट काम करते-करते देह अकड़ने लगती है।"[52] अर्थात पूँजीपतियों के आर्थिक शोषण के कारण सोलह-सोलह घंटे काम करके भी मजदूर अपना घर ठीक से चला नहीं पा रहा है।

---

51. संजीव, 'धनुष टंकार', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 175

52. संजीव, 'भूखे रीछ', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 103

'सागर सीमान्त' कहानी में मछुआरों के आर्थिक शोषण पर प्रकाश डाला गया है। अनुदित उपन्यास मछुआरे में भी मछुअरों की आर्थिक स्थिति विपन्न है। उनके पास न तो अपना जाल है और न ही नाव। ये सारी चीजे उन्हें महाजनों से लेनी पड़ती है और बदले में महाजन उनकी मछलियों को औने-पौने दामों में खरीदते हैं। इनका और भी शोषण बड़े-बड़े ट्रालरों के माध्यम से समुद्रों में पूँजीपतियों के प्रवेश से हो रहा है। वे समुद्र के अधिकांश क्षेत्र पर अवैध कब्जा जमा लेते हैं और अपने ट्रालरों के आवाजों से दूर की मछलियों को भी भगा देते हैं। इस प्रकार मछुआरों के हिस्से में बहुत कम मछलियाँ आती हैं। इसी प्रकार **'सागर सीमान्त'** कहानी में भी महाजन रेडियो पर मिलने वाली समुद्री तूफान की चेतावनी से गरीब, अशिक्षित मछुआरों को जान-बुझकर सचेत नहीं करता है। महाजनों के लिए मछुआरों की जान से भी ज्यादा कीमती है मछलियाँ। तभी तो कहानी का एक पात्र बूढ़ा नूर बड़बड़ाता है –"यहाँ तो नावें चटर्जी बाबू की, जाल चटर्जी बाबू के। हमलोग क्या हैं –सिर्फ भाड़े के टट्टू! नाव भर-भरकर चाँदी-सी चमकती मछलियों की ढेर लदी आती है और हमारे हिस्से क्या आता है? छाई (खाक)! आधी तो इसी हाट में तोलवा लेता है, बाकी आधी में बाँट लो। फिर थोड़ा-थोड़ा कहाँ बेचोगे? दो औने-पौने दाम में उन्हीं को।...हमसे घृणा भी करता है, हमें छोड़ता भी नहीं।"[53]

'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास में भी ठेकेदार काली को काम का मजदूरी नहीं देता है, उससे बेगारी करवाता है। **'धार'** उपन्यास में भी महेंद्र बाबू आदिवासी मजदूरों से तेजाब की फैक्ट्री में काम करवाते हैं। चार-चार महीने से उनको तनख्वाह नहीं देते हैं। तेजाब का जहर वहाँ की वादियों में घोल देता है।

5. आर्थिक विसंगतियाँ

आजादी के बाद अमीरों और गरीबों के बीच की खाई और बढ़ती गई। अमीर और

---

53. संजीव, 'सागर सीमान्त', संजीव की कथा यात्रा दूसरा पड़ाव, संस्करण :2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 190-191

अमीर बनता गया, गरीब और गरीब। संजीव ने अपने प्रारंभिक कहानी **'तीस साल का सफ़रनामा'** में ही दिखला दिया कि नंबरदार और अधिक अमीर महाजन बन गया जबकि सूरजा किसान से मजदूर बन गया। उन्होंने अपने उपन्यास **'जंगल जहाँ शुरू होता है'** में भी रेखंकित किया है कि डाकू बनने के मूल में भूमि का उचित बँटवारा न होना अर्थात आर्थिक विषमता है। आर्थिक विसंगतियों के कारण व्यक्ति इतना मजबूर हो जाता है कि पेट के लिए कुमार्ग चयन कर बैठता है। अर्थ के बल पर पूँजीपति गरीबों का शोषण करते-करते उनका मनोबल तोड़ देते हैं।

'प्रेत मुक्ति' कहानी के उस अंचल में गरीबी, भुखमरी, अंधविश्वास और कुपोषण का स्तर इतना ऊँचा है कि बहुत-सी औरतों के स्तन सुख गए हैं। उन्हें देखकर पुरुष-स्त्री में अंतर करना मुश्किल हो रहा है। छोटे कद और कुपोषण के कारण कथाकार पचपन वर्ष के एक वृद्धा को आठ वर्ष का लड़का समझ बैठता है। यहाँ गाँव के लोग दाने-दाने को मोहताज हैं जबकि दूसरी ओर गाँव के मुखिया जी फल-फूल रहे हैं। ऐयाशी कर रहे हैं। डॉ. मुर्तजा नए मेडिकल अफ़सर से कहते हैं कि आजतक कोई यह नहीं जान सका कि मुखिया जी की जमीनें और औरतें कितनी हैं। वे बड़ी हवेली के मालिक हैं। उनकी हवेली का वर्णन करते हुए संजीव लिखते हैं –"सामने हवेली की चहारदीवारी थी। जर्सी गायों और मुर्रा भैसों का हुजूम! ट्रैक्टर, थ्रेसर, पत्थर काटकर की जा रही बोरिंग, पुआलों के पहाड़। जिलाधिकारी मुझे मुखिया जी के वैभव, बाग़-बगीचों, नौकरों-चाकरों का परिचय देते चल रहे थे।"[54]

इसी प्रकार **'किशनगढ़ के अहेरी'** में दलित तथा **'धार'** उपन्यास में संथाल आदिवासी आर्थिक विसंगतियों के कारण निम्न कोटि का जीवन जीने के लिए बाध्य हैं।

निष्कर्ष : मनुष्य एक चिंतनशील सामाजिक प्राणी है और चिंतन मन की बातों से संबंधित मानसिक क्रिया है। जब-जब मनुष्य पर कोई समस्या आती है तो वह इसके समाधान

---

54. संजीव, 'प्रेत मुक्ति', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण :2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 325

के लिए कोई न कोई उपाय जरूर सोचता है। इसलिए चिंतन समस्या समाधान संबंधी व्यवहार है। एक चिंतनशील व्यक्ति ही समाज में अपना योगदान दे सकता है। साहित्य और समाज के बीच एक गहरा संबंध होता है। साहित्यकार जिस समाज में रहता है, वहाँ होने वाली घटनाओं से वह खाद-पानी ग्रहण करता है। कथाकार संजीव का स्वयं मानना है कि अपने आसपास पसरे नर्क और उससे जूझते अपने लोगों से वे आँखें नहीं मूंद सकते हैं। अतः वे अपने साहित्य में मनुष्य पर आए किसी भी समस्या के समाधान के लिए चिंतन-मनन करते हैं। विकासोन्नमुख मनुष्य की बढ़ती आवश्यकताओं को पूर्ण करने में असमर्थ संस्थाएँ समस्याओं को जन्म देती हैं जिसका समाधान वृहद चिंतन-मनन के पश्चात समाज ढूँढ़ता है। संजीव ने अपने कथा साहित्य में जाति-भेद, छूआछूत, अशिक्षा, शादी-ब्याह, संस्कार, सामंती पूँजीवादी शोषण, भ्रष्ट न्याय व्यवस्था, स्त्री प्रश्न, आर्थिक विषमता आदि विभिन्न समस्याओं पर विचार किया है।

चरम दरिद्रता और आर्थिक संकट इन्सान को उतना नहीं तोड़ता है, जितना जातिवाद के कारण झेली जानी वाली अपमानजनक स्थितियाँ उसे तोड़ती हैं। इनकी कुछ प्रारंभिक कहानियाँ **'पिशाच', 'जसी-बहू', 'भूखे रीछ'** में दलित जहाँ इस जातिभेद और अपमानजनक स्थितियों, अत्याचार, अन्याय, उत्पीड़न को चुपचाप सहते हैं, गाँव से पलायन कर जाते हैं, वहीं बाद की कहानियाँ **'जब नशा फटता है', 'तिरबेनी का तड़बन्ना'** इत्यादि में जुर्म के खिलाफ मुखर होते हैं। उनमें सामाजिक चेतना का विकास होता है।

सदियों से हमारे देश में सवर्ण समाज दलित समाज के लोगों से ऊँच-नीच और छुआछूत का भेद रखता है। दलित स्त्रियाँ हवस के लिए उन्हें स्वीकार हैं पर हवस मिटने के बाद वे अछूत और नीच हो जाती हैं। **'जब नशा फटता है'** कहानी में मेहतर समाज द्वारा अपने अधिकारों के माँग को लेकर किए जा रहे हड़ताल पर सवर्ण समाज उनसे छू जाने के डर से पत्थर से हमला करता है। **'प्याज के छिलके'** कहानी में हरिजन युवती कैलशिया द्वारा मुंशी के खेत से एक प्याज उखाड़ने के जुर्म में उसे झोंटा पकड़कर पीटा और घसीटा जाता है। कैलशिया को छू लेने के कारण मुंशी अपने हाथ को रगड़-रगड़ कर साफ करता है, स्नान करके हनुमान चालीसा के पाठ द्वारा अपने को पवित्र करता है।

संजीव ने अपने कथा साहित्य में चरमराती सामंती व्यवस्था में जमींदारों के आक्रोश, अत्याचार, उत्पीड़न और जमींदारी हथकंडों तथा दुष्चक्रों का सजीव चित्रण किया है। कहानी **'पूत पूत! पूत पूत!!'** में सरकार द्वारा गरीबों-दलितों को पट्टों पर दी गई जमीनों को सवर्णों द्वारा पुनः कब्जियाने, बोने और खेतों में लगे फसलों को दलितों द्वारा काटने द्वारा काटने के नाम पर संग्राम है। **'तिरबेनी का तड़बन्ना'** कहानी में सरकार द्वारा दलितों के उत्थान के लिए उनको दी जाने वाली जमीन, गाय-भैंस, ऊँट, रिक्शा इत्यादि राह भटककर सवर्णों के दरवज्जे चला जाता है। **'प्रेत मुक्ति'** कहानी में अपना दबदबा बनाये रखने के लिए जमींदार सामंतवादी शोषण का विरोध करने वाले जगेसर को पागल करार कर देते हैं तथा उसके पिता को बाघ के चारे के रूप में बाँध देते हैं। **'अहेर'** उपन्यास में कथाकार ने शोषक वर्ग को नपुंसक और हिजड़ा कहा है, परंतु, पुंसत्व तो उसमें है जो गरीब, दोहित, शोषित होकर भी संघर्ष का परचम लहराते हैं। **'मरोड़', 'प्याज के छिलके', 'आहट', 'लिटरेचर'** आदि कहानियों में पूँजीपतियों के निर्मम अत्याचारों एवं शोषक स्थितियों का यथार्थ चित्रण किया गया है।

न्यायपालिका हमारे लोकतांत्रिक व्यवस्था का तीसरा स्तंभ है जिसका कार्य संवैधानिक प्रणाली का पालन करना और करवाना होता है। इसका स्वरूप धर्मनिरपेक्ष है। हमारे देश में अदालत को मंदिर तथा न्यायधीश को ईश्वर तुल्य समझा जाता है। परंतु वर्तमान संदर्भ में न्यायालय का भी राजनीतिकरण हो गया है। बहुत सारे केसों में न्यायधीश निष्पक्ष नहीं रह पा रहे हैं और न्याय का मंदिर पूँजीपतियों के पक्ष में मुड़ता जा रहा है। संजीव ने अपने कथा साहित्य में **'अपराध', 'घर चलो दुलारीबाई!', 'फैसला', 'तीस साल का सफ़रनामा', 'कठपुतली', 'दुनिया की सबसे हसीन औरत', 'ब्लैक होल', 'सावधान! नीचे आग है'** आदि के माध्यम से इस भ्रष्ट न्याय व्यवस्था की पोल खोली है। **'घर चलो दुलारीबाई!'** में अदालत झूठे गवाहों के आधार पर जीवित दुलारीबाई को मृत मान लेती है। संजीव ने **'अपराध'** कहानी में ही कहा था कि न्याय सत्य-सापेक्ष नहीं अपितु तथ्य-सापेक्ष है और तथ्य सामर्थ्य-सापेक्ष। यहाँ सामर्थ्य दुलारीबाई के जेठ के पास है, जिसने सारे सबूतों और गवाहों को अपने पक्ष में खरीद लिया है। **'कठपुतली'** कहानी में भी प्रमाण और साक्ष्य के अभाव में

कानून और न्याय व्यवस्था कल्याणी दी की हत्या को आत्महत्या करार देकर फाइल बंद कर देता है। **'फैसला'** कहानी में तो जज मेहरून्निसा तीन तलाक के मुद्दे पर कट्टरपंथियों के डर से सही फैसला देने में द्वंद्व की स्थिति में हैं। जबकि **'जंगल जहाँ शुरू होता है'** उपन्यास में खेतों के मामले अदालत में वर्षों लंबित रहते हैं।

संजीव के यहाँ हर वर्ग की स्त्री है परंतु शोषित, पीड़ित, दलित स्त्रियों के प्रति उनकी संवेदना अधिक है। क्योंकि न्याय के ठेकेदार स्वयं उनकी गरिमा कलंकित करने पर तुले हैं। **'जंगल जहाँ शुरू होता है'** उपन्यास में पुलिस अधिकारी मि. कुमार तहकीकात के बहाने डाकु काली की फुफेरी बहन मलारी से संभोग करते हैं। इसी उपन्यास में जोगी नामक पात्र गरीब, बेसहारा महिलाओं का वस्तु के समान खरीद-फरोख़्त का धंधा करता है। **'धार'** उपन्यास की नायिका 'मैना' के साथ जेलर जेल में ही जबरदस्ती बलात्कार करके उसे गर्भवती बना देता है। **'कठपुतली'** की कल्याणी दी सेठ की रखैल हैं। इनके यहाँ अश्लीलता से सर्वथा परहेज है। विरोध का स्वर मुखर करने वाली स्त्री ही दुनिया की सबसे हसीन औरत है।

समाज में रहते हुए रोजमर्रा की जरूरतों को पूरा करने के लिए अर्थ की आवश्यकता पड़ती है। श्रम, यौवन, शरीर, जीवन, आत्मा, आत्मसम्मान सब इसके जद में हैं और इसे प्राप्त करने के लिए मनुष्य किसी भी हद तक गिर रहा है। आर्थिक विषमता के कारण समाज उच्च, मध्य और निम्न वर्ग में विभाजित हो चुका है। उच्चवर्ग और अधिक अमीर बनने के लिए कोई भी हथकंडा अपनाने से नहीं हिचकिचाता है। सरकारें भी पूँजीपतियों की पोषक हैं। मध्यवर्ग अपनी आशाओं-आकांक्षाओं पर सवार उच्च और निम्नवर्ग के बीच झूलता रहता है तथा निम्नवर्ग अपनी तमाम कोशिशों के बावजूद लकीर का फकीर बना रहता है। इस कारण प्रत्येक वर्ग के अंदर वर्ग-संघर्ष, अत्यधिक धन कमाने की लालसा इत्यादि प्रवृत्तियों का जन्म होता है। जो संजीव के कथा साहित्य में सफलता से रेखांकित है।

हमारे देश में सबसे बड़ी बीमारी का नाम गरीबी है। **'लोडशेडिंग'** कहानी में छः सदस्य वाले परिवार के खर्च का बोझ एक कमाने वाले पर है जिसके कारण परिवार में तनाव और कड़वाहट बढ़ता जाता है। **'महामारी'** कहानी में कथाकार के शब्दों में दो-चार संपन्न गृहस्थों

को छोड़कर किसी के यहाँ भी दोनों जुन भोजन नहीं बनता है। रंगई बहू की छः साल की बच्ची अपनी उलटी (बोमी) को कटोरे में काछकर फिर से खाने के लिए बाध्य है। **'लांग-साइट'** कहानी में महिलाएँ स्टीम इंजनों की फेकी छाई से कोयला चुनकर बेचती हैं। **'चाकरी'** कहानी में कथानायक के पिता होटल में टेबुल पर कपड़ा मारने का और माँ जूठे बर्तन मलने का काम करती है। **'धार'** उपन्यास में इललिगल कोल माइनिंग में काम करने वाले श्रमजीवी आदिवासियों की गरीबी, भुखमरी, बदहाली एवं अभावग्रस्त जीवन को व्यापक फलक पर परिभाषित किया गया है। **'जंगल जहाँ शुरू होता है'** उपन्यास में भी थारू जनजाति के लोगों का जीवन भी विपन्न है।

बेरोजगारी हमारे देश की प्रमुख समस्या है। संजीव की पहली कहानी **'क़िस्सा एक बीमा कंपनी की एजेंसी का'** में शिक्षित बेरोजगार फ़ीयरलेस कंपनी का एजेंट बनकर अपनी जीविका चलाता है। **'सावधान! नीचे आग है'** तथा **'धार'** में क्रमशः झरिया तथा बिहार के संथाल परगना में कारखानों तथा कोयला खदानों की भरमार होने के बावजूद यह क्षेत्र रोजगार के मामले में बीहड़ ही है, जिसके कारण यहाँ के लोग अवैद्य खनन करते हैं। **'जगल जहाँ शुरू होता है'** उपन्यास में चीनी मिल बंद होने से काली बेरोजगार हो जाता है, ठीके पर काम करने से ठेकेदार ठीक से पैसा नहीं देता है अतः वह डाकू बनने का कुमार्ग चुनता है। **'चुनौती'** कहानी में तो बेरोजगारी की स्थिति इतनी भयावह है कि अपने पुत्र को नौकरी दिलवाने के लिए कामतानाथ काम करते-करते कारखाने में मर जाना चाहते हैं ताकि उनकी जगह उनके पुत्र को नौकरी मिल सके।

सवर्ण शोषण और भुखमरी से परेशान ग्रामीण युवा ने आजीविका की तलाश में शहर की ओर पलायन किया है। **'जसी-बहू'** कहानी में जसी आजीविका की तलाश में ही शहर जाता है। स्वयं संजीव का परिवार पश्चिम बंगाल के कुल्टी में अर्थाजन के लिए ही आया था। **'धार'** उपन्यास में कुछ आदिवासी तेजाब फैक्ट्री में तो कुछ जमींदरों के खेत में तथा कुछ पशु पालन का कार्य भी करते हैं। **'अहेर'** उपन्यास में लोमड़ियों और शाहियों के शिकार के अलावा प्रकृति के फल, शकरकंद, गन्ना, इत्यादि दलितों के आहार हैं।

अतः भले ही आज हम विज्ञान के युग में जी रहे हैं परंतु आदिवासियों, दलितों में शिक्षा के अभाव के कारण अंधविश्वास, कर्मकांड, धर्मांधता भरा हुआ है। जाति-पाति और छुआछूत से ग्रस्त यह समाज आज भी सामंती पूँजीवादी शोषण का शिकार है। भ्रष्ट न्याय-व्यवस्था के जाल में उलझकर समाजार्थिक समरूपता के लिए दर-दर भटक रहा है। निर्धनता, बेरोजगारी, आर्थिक विषमता और आर्थिक शोषण से त्रस्त यह समाज आज दिशाहारा है। संजीव का साहित्य इस दिशाहारा समाज के समाजार्थिक स्थिति पर चिंतन और संघर्ष करता है तथा उनमें आशा संचार करने का प्रयास करता है।